स्त्री-शक्ति

विनोबा

स्त्री-शक्ति

विनोबा

© ग्राम सेवा मण्डल
गोपुरी, वर्धा (महाराष्ट्र)

प्रकाशक
सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी 221001
फोन: 0542-2440223
Email: sarvodayavns@yahoo.co.in

प्रकाशकीय

'स्त्री-शक्ति' पुस्तक का यह संस्करण पाठकों तक पहुँच रहा है। इसमें विनोबाजी के अद्यतन विचार हैं। हमें प्रसन्नता है कि इन विचारों का अच्छा स्वागत हो रहा है।

स्त्रियों की शक्ति में विनोबाजी की अकूत आस्था थी। स्त्री-पुरुष-अभेद के वे प्रबल समर्थक थे। आज के इस वैज्ञानिक युग में तो यह बिलकुल ही असंगत बात मानी जायेगी कि स्त्रियाँ घर की चहार-दीवारी में कैद रहें। विनोबाजी का कहना था कि स्त्रियों में से शंकराचार्य जैसी प्रखर वैराग्यसम्पन्न और ज्ञानवती संन्यासिनियाँ पैदा होंगी; तभी भारतवर्ष का उद्धार होगा। ब्रह्म-विद्या यानी परमात्म-विद्या की अधिकारिणी बहनें ही ज्यादा हैं। इसी दृष्टि से पवनार में विनोबाजी ने ब्रह्म-विद्या-मन्दिर की स्थापना की है; जहाँ बहनें विशिष्ट प्रयोग में लगी हैं। परिशिष्ट में ब्रह्मविद्या-मन्दिर तथा स्त्री-शक्ति-जागरण की जानकारी दी है। पूरी पुस्तक ही नये विचारों से ओतप्रोत है। इसमें इतनी प्रखरता तथा मधुरता है कि जो भी पढ़ेगा, वह इससे प्रेरित होगा। स्त्री और पुरुष—दोनों के लिए यह अत्यन्त उपयोगी एवं प्रेरक रचना है।

•

अनुक्रमणिका

१. स्त्री-शक्ति का आशय

२. स्त्री-शक्ति की बुनियाद-ब्रह्मविद्या

३. स्त्री-शक्ति और समाज-परिवर्तन

४. संयम से परिवार-नियोजन

५. स्त्री, मानवमूर्ति की शिल्पकार

६. प्रकीर्ण

परिशिष्ट

ब्रह्मविद्या-मन्दिर

स्त्री-शक्ति-जागरण

स्त्री-शक्ति

स्त्रियों के काम के विषय में मुझे विशेष श्रद्धा, आशा और आस्था है। वे सार्वजनिक काम में भाग लें और केवल पुरुषों का अनुकरण करें, ऐसी मेरी अपेक्षा नहीं है। लेकिन मैंने अपेक्षा यह रखी है कि वे सार्वजनिक कार्य में शरीक होंगी, तो उससे सार्वजनिक सेवा-पद्धति की शुद्धि होती जायेगी और पुरुषों पर नियंत्रण रहेगा।

*

हमारी संस्कृति ने स्त्रियों से बहुत अपेक्षा रखी है। बहनें अगर अहिंसा के संदेश को उठा लेती हैं, तो दुनिया की रक्षा होगी। अहिंसा को स्वीकार करना उनके लिए पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा सरल है, ऐसा माना जाता है। भावी युग में समाज का नियंत्रण करने का काम बहनों के पास आनेवाला है। उसकी तैयारी उन्हें अपनी सेवा-वृत्ति द्वारा करनी है।

*

यह सच है कि शान्ति की मूर्ति गढ़ी नहीं जा सकती, पर मान लें कि उसे गढ़ना ही है, तो वह स्त्री-मूर्ति ही हो सकती है। काम, क्रोध, मद, मत्सर आदि विकार जैसे पुरुषों में होते हैं, वैसे ही स्त्रियों में भी हो सकते हैं। ममता, प्रेम आदि गुण, दोनों में होते हैं। इन बातों में कोई एक-दूसरे से ऊँचा-नीचा हो, ऐसी बात नहीं है। फिर भी शान्ति की मूर्ति स्त्री हो सकती है, क्योंकि वह मातृस्थान है। वह सारे समाज की तारिणी-शक्ति है। जो तारिणी-शक्ति होगी, वही शान्ति की मूर्ति हो सकती है।

(१) स्त्री-शक्ति का आशय

संस्कृत में स्त्री के लिए बहुत शब्द हैं। उनमें से एक है अबला और दूसरा है महिला। अबला के माने हैं दुर्बल, जिसकी रक्षा दूसरों को करनी पड़ेगी, रक्षणीय। और महिला का अर्थ होता है महान्, बहुत बड़ी ताकतवाली। इतना उन्नत शब्द, दुनिया की जितनी भाषाओं का मुझे ज्ञान है—करीब बीस-पचीस भाषाओं का, उनमें किसी में मिला नहीं। इधर अबला भी कहा और उधर महिला भी कहा। मैं पूरे हिन्दुस्तान में घूमा हूँ, पर मैंने अबला-समिति कहीं देखी नहीं, महिला-समिति देखी है। बहनों ने परीक्षा की है और महिला शब्द चुन लिया है। मतलब स्त्रियों ने तव किया कि हमारी महान् शक्ति है, अल्प शक्ति नहीं। 'महिला' शब्द ही बताता है कि स्त्री के बारे में भारत की क्या राय है और क्या अपेक्षा है।

दूसरी बात, 'स्त्री' शब्द स्तृ' धातु से बना है। स्तृ का अर्थ है विस्तार करना, फैलाना। स्त्री यानी फैलानेवाली—प्रेम को कुल दुनिया में फैलानेवाली। 'स्त्री' शब्द में ही स्त्री का कार्य सूचित किया गया है। प्रेम का विस्तार, प्रेम की व्यापकता स्त्री द्वारा होगी। स्त्री समाज का तारण करनेवाली, तारिणी-शक्ति है।

समाज की गलत दृष्टि

स्त्री की इतनी शक्ति होने पर भी समाज स्त्री की तरफ किस दृष्टि से देखता है? आज संसार में और परमार्थ में, दोनों में स्त्री टारगेट (लक्ष्य) बनी है। मध्यबिन्दु में है। सांसारिकों के लिए वह भोग का लक्ष्य बनी। सारा साहित्य, सारी कला, सारे रस उसी के इर्दगिर्द घूमते रहते हैं। दूसरी ओर परमार्थियों ने उसे लक्ष्य बनाया वैराग्य का। उसे बन्धन में डालनेवाली माना और इसलिए उसके प्रति घृणा, तिरस्कार रखा, यहाँ तक कि उसकी तरफ देखना भी गलत माना।

एक दफा मीराबाई वृंदावन गयी थीं। वहाँ एक सन्त पुरुष थे, जिनका बहुत बोलबाला था। मीराबाई ने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। उन्हें लगा कि संन्यासी का दर्शन होगा, तो कुछ

बोध-प्राप्ति का मौका मिलेगा। लेकिन जब संन्यासी से पूछा गया तब जवाब मिला कि स्वामी महाराज स्त्रियों का मुख-दर्शन नहीं करते। यह सुनकर मीराबाई ने एक भजन लिखा – d

हुं तो जाणती हती के व्रजमां पुरुष छे एक

व्रजमां रहीने पुरुष रह्या भलो तमारो विवेक

इसमें एक विनोदभरा उपालम्भ है कि व्रज में रहकर भी आपका पुरुषत्व का अहंकार गया नहीं। व्रज में पुरुष तो एक ही है और जो लोग व्रज में आते हैं वे स्त्रीत्व-पुरुषत्व का अहंकार छोड़कर उसकी उपासना करते हैं।

वास्तव में होना तो यह चाहिए कि ब्रह्मचारी के सामने कोई स्त्री आती है, तो वह अपने को ज्यादा पवित्र और सुरक्षित महसूस करे। मेरा अपना तो यह अनुभव है कि जब सामने कोई स्त्री आती है तब लगता है कि मेरी माता ही आ गयी। इसलिए मुझे अधिक सुरक्षा मालूम होती है। क्योंकि माता पास खड़ी हो तो हम गलत काम करते नहीं। स्त्री के सान्निध्य में तो अधिक सुरक्षितता महसूस होनी चाहिए। परन्तु ब्रह्मचारी-संन्यासी को स्त्री के सम्पर्क से बचना चाहिए, यह एक गलत ख्याल बन गया। इस तरह स्त्री सांसारिकों के लिए आसक्ति का विषय बनी और परमार्थियों के लिए विरक्ति का।

यह सारा इसलिए हुआ कि इस जमाने में सारी ब्रह्मविद्या (आत्मज्ञान) पुरुषों के द्वारा आगे आयी। बड़े-बड़े आचार्य, महापुरुष अधिकतर पुरुष ही हुए। ब्रह्मविद्या की गर्जना करनेवाली स्त्री इस जमाने में निकली नहीं। कुछ भक्त स्त्रियाँ निकलीं। लेकिन भक्त होना एक बात है और दुनिया में जाकर अपनी विचार-निष्ठा से शेर के समान गर्जना करना दूसरी बात है। भक्त के मन में भावना बहुत होती है। उसे स्वप्न में दर्शन भी हो सकता है। लेकिन उसमें क्रान्ति की शक्ति होती ही है, ऐसा नहीं। मीराबाई कवि थीं इसलिए उनका समाज पर असर हुआ। अन्यथा आम तौर पर ये लोग एकान्तप्रिय होते हैं, समाज से दूर रहनेवाले होते हैं। होना चाहिए सूर्यनारायण की तरह। सूर्यनारायण को कहीं भी डर नहीं। गुहा में प्रवेश करने के लिए वह डरेगा नहीं और उसके सामने अँधेरा टिकेगा नहीं। सामाजिक आक्रमण का सामना करने की शक्ति स्त्रियों में जगनी चाहिए,

और जग भी रही है। लेकिन ब्रह्मविद्या (आत्मज्ञान) की लगन से बहनें सामने आयी हैं, ऐसा अभी तक बना नहीं है।

मैंने तो मान लिया है कि स्त्री की दुर्दशा का सारा जिम्मा पुरुषों पर है। मैं तो पुरुष के नाते सारा-का-सारा जिम्मा उठाने की इच्छा करूँगा। लेकिन इच्छा करने पर भी वह हो नहीं सकेगा। क्योंकि दो चेतन वस्तुओं में होनेवाले परिणामों का जिम्मा एक पर ही नहीं डाला जा सकता। मैं अगर स्त्री होता, तो सहसा सब पुरुषों को मुक्त कर देता, कहता कि यह सारी जिम्मेदारी मेरी है। अगर मैं जड़ होता, स्त्री या पुरुष की तरह चेतन न होता, तो चुप रहता। पर चूँकि चेतन हूँ, इसलिए अपनी सारी-की-सारी जिम्मेदारी दूसरों पर डालना कैसे पसन्द करूँगा? स्त्रियाँ खुद आगे आयेंगी तभी उनकी शक्ति जाग सकेगी।

वास्तव में शक्ति का जो मूल स्त्रोत है, वह न स्त्री-शरीर में है, न पुरुष-शरीर में है। वह अन्तरात्मा में है। आत्मा स्त्री-पुरुष-भेदरहित हे। सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है। परन्तु मनुष्य को भास होता है कि शक्ति हाथ में है, पाँव में है, आँख-कान में है। जब तक आत्मशक्ति का भान नहीं होता तब तक हमलोग अपनी मूल शक्ति को छोड़कर उसके प्रतिबिम्ब को ही पकड़कर रखते हैं। हाथ, पाँव, आँख और कान में जो शक्ति है, वह तो अन्दर की किसी चीज के साथ उसका सम्बन्ध होने से है। वह चीज केवल 'शरीर' नहीं है। वह चीज तो है आत्मा की शक्ति। वह आत्मशक्ति हाथ, पाँव, आँख और कान द्वारा प्रकट होती है। इसलिए जब आत्मशक्ति का भान होता है तब न किसी प्रकार का मोह होता है, न भय रहता है। आत्मशक्ति का भान होते ही मनुष्य पर और कोई सत्ता चल नहीं सकती। उसको परिपूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो जाती है।

शंकराचार्य जैसी स्त्री निकले

इसलिए मैं चाहता हूँ कि भारत की स्त्रियाँ आत्मशक्ति का भान रखकर सामने आयें। भविष्य में स्त्रियों के हाथ में समाज का अंकुश आनेवाला है। उसके लिए स्त्रियों को तैयार होना पड़ेगा। ज्ञान-वैराग्य सम्पन्न, भक्तिमान और निष्ठावान स्त्रियाँ निकलेंगी, धर्म पर उनका प्रभाव होगा, तभीं उनका उद्धार होगा।

जब तक शंकराचार्य के समान प्रखर वैराग्य-सम्पन्न और ज्ञानी स्त्री पैदा नहीं होती तब तक स्त्रियों का उद्धार श्रीकृष्ण, महावीर और गांधी जैसे पुरुष भी नहीं कर सकते। कुछ हद तक मदद की जा सकती है। परन्तु स्त्रियों का उद्धार स्त्रियों से ही होनेवाला है। वैराग्यशील और ज्ञान का प्रचार करनेवाली बहनें, जिनसे शास्त्र बन सकता है, धर्म बदल सकता है, क्यों न निकलें, यह मेरी समझ में नहीं आता। अगर मैं स्त्री होता तो न जाने कितनी बगावत करता! मैं तो चाहता हूँ कि स्त्रियों की तरफ से बगावत हो। लेकिन बगावत तो वह स्त्री कर सकेगी, जो वैराग्य की मूर्ति होगी। वैराग्यवृत्ति प्रकट होगी तभी तो मातृत्व भी सिद्ध होगा। इसलिए मैं मानता हूँ कि शंकराचार्य जैसी तेजस्वी स्त्री प्रकट होगी तभी स्त्रियों का उद्धार होगा। स्त्रियाँ स्वतंत्रता चाहती हैं, तो उन्हें वासना के बहाव में बहना नहीं चाहिए।

बगावत करने की वृत्ति को अविनयशील मानने की जरूरत नहीं। बगावत की वृत्ति और विनयशीलता में कोई विरोध नहीं है। विनयशीलता से तो बगावत बलवान बनती है। समझ-बूझकर और उचित समझकर किसी उचित आज्ञा को मानना विनयशीलता है। अनुचित आज्ञा को न मानना बगावत है और विनयपूर्वक वह हो सकती है।

बगावत का स्वरूप

कुल दुनिया में बहनों के बारे में समाज ने कुछ पाबंदियाँ रखी हैं, उनके खिलाफ बहनें आन्दोलन करें तो बहनों को अपनी योग्यता की प्राप्ति होगी। लेकिन वह 'एंटीथिसिस' (प्रतिवाद) होगा। दुनिया में कोई गलत विचार चला, पुरुषत्व के अभिमान के सामने स्त्रीत्व का अभिमान खड़ा हुआ तो, वह रिएक्शन (प्रतिक्रिया) है। उससे पुरुष के पुरुषत्व के अभिमान में जो दोष आ गये हैं, वे ही दोष स्त्री के स्त्रीत्व के अभिमान में आयेंगे। पेंड्युलम कभी इधर जायेगा, कभी उधर जायेगा। उससे जीवन का शुद्धिकरण नहीं होगा। तो फिर क्या करना चाहिए?

ऐसी बहनें और ऐसे भाई निकलने चाहिए, जो स्त्रीत्व-पुरुषत्व के अभिमान से रहित हों। तभी उसका हल होगा। पुरुष में पुरुषत्व का अभिमान नहीं, स्त्री में स्त्रीत्व का अभिमान नहीं। मैं अभिमान शब्द संस्कृत के अर्थ में इस्तेमाल कर रहा हूँ। संस्कृत में वह विशेष अर्थ में प्रयुक्त है।

अभिमान न होना यानी भान न होना। 'मैं स्त्री हूँ', 'मैं पुरुष हूँ', यह भान ही न हो। जो स्त्री-पुरुष ऐसे होंगे वे ही इसका उपाय ढूँढ़ेगे। ईसा मसीह की भाषा में कहना हो तो जो भगवान के लिए 'नपुंसक' बना होगा, उसी का यह काम है। ईसा मसीह ने बड़ा विलक्षण शब्द इस्तेमाल किया। स्त्री-पुरुष दोनों को लागू होनेवाला यह शब्द है। अगर ऐसा 'नपुंसकत्व' (स्त्रीत्व, पुरुषत्व का भान न होना) समाज में रूढ़ होगा, तो समाज में स्त्रियों के प्रति जो गलत धारणा रूढ़ हो गयी है, उसका निरसन हो सकता है।

•

(२) स्त्री-शक्ति की बुनियाद - ब्रह्मविद्या

स्त्री-पुरुष-भेद मानने की मेरी वृत्ति नहीं है। मैं मानता हूँ कि स्त्रियों के सामाजिक, कौटुम्बिक, राजनैतिक अधिकार और कर्तव्य वे ही हैं, जो पुरुष के हैं। दोनों में एक ही मानव-आत्मा है, इसलिए बाह्य भेद दिखायी देने पर भी उनको महत्त्व देने की जरूरत नहीं। दोनों में जो बाह्य भेद है, उसके कारण दोनों के कार्यक्षेत्र में कुछ थोड़ा फरक होना स्वाभाविक है, लेकिन उतने आधार पर उस भेदभाव को ठीक नहीं कहा जा सकता, जो आज समाज में मौजूद है।

मेरे अपने मन में तो स्त्री-पुरुष-असमानता है नहीं। हमने तो भगवान को भी कहा है **त्वं स्त्री त्वं पुमान् असि। त्वं कुमार उत वा कुमारी**—तुम स्त्री हो, तुम पुरुष हो, तुम कुमार हो, तुम कुमारी भी हो। यह तो ऊपर-ऊपर का आकारभेद है। अन्तर में मानव-आत्मा तो एक ही है।

भेद का भ्रम

हिन्दुस्तान में बीच के जमाने में कुछ विचारक ऐसे हो गये, जिन्होंने स्त्री-पुरुष-भेद को मूलभूत समझा। उसका आधार केवल उनकी कवित्व-शक्ति है। सांख्यों ने सृष्टि का निरीक्षण करते हुए दो तत्त्व पाये—एक विविधरूपधारी जड़, दूसरा एकरस चेतन। एक को उन्होंने कहा प्रकृति और दूसरे को पुरुष। कुछ लोगों ने इन्हें माया-महेश्वर नाम भी दिये। दोनों के संयोग से संसार चल रहा है। प्रकृति शब्द स्त्रीलिंगी है और पुरुष पुंलिंगी। इसी शाब्दिक लिंगभेद का उपयोग कर कवियों ने कहा कि स्त्री प्रकृति-तत्त्व का प्रतिनिधित्व करती है और पुरुष पुरुष-तत्त्व का। कुछ विचारकों ने इसे गम्भीर स्वरूप दिया और माना कि स्त्री संसारासक्त होती है, वह मोक्ष की अधिकारिणी नहीं हो सकती। स्त्री को मोक्ष पाना है तो उसे दूसरे जन्म में पुरुष होना होगा। इन विचारकों के विचार की सिद्धि के लिए, सिवा उनकी विकृत बुद्धि और काव्य-शक्ति के और कोई आधार नहीं है।

यह यहाँ तक गया कि संस्कृत काव्यों में मैंने पढ़ा कि दमयंती के महल में वायु का प्रवेश नहीं था; क्योंकि वायु पुंलिंगी है औ परपुरुष को दमयंती के महल में कैसे स्थान हो सकता है?

जब मैंने यह पढ़ा तो यह सोचकर व्याकुल हो गया कि दमयंती का क्या हाल हुआ होगा! लेकिन थोड़ी देर में ध्यान में आया कि वहाँ वायु नहीं, लेकिन हवा तो जरूर जाती होगी, क्योंकि वह स्त्रीलिंगी है, तो निश्चित हो गया। ऐसी है शब्दों की महिमा! प्रकृति, पुरुष शब्दों के आधार पर भेद का भ्रम फैलाया गया।

स्त्री को संसारासक्त और पुरुष को मोक्षप्रवण विरक्त माननेवाली विचारधारा के अलावा एक दूसरी विचारधारा भी है, जो कहती है कि स्त्री पुरुष से श्रेष्ठ है। उसमें दयाभाव सहज ही अधिक होता है, बालकों की शिक्षा और समाजशासन स्त्री के हाथ में दिया जाय, तो अहिंसक समाज-रचना सुलभता से होगी। इन सब कार्यों में स्त्रियाँ भाग लें, यह मैं भी चाहता हूँ। लेकिन जैसा कि ये नये विचारक मानते हैं वैसा मैं नहीं मानता। क्योंकि दया आदि गुण न किसी जाति के आश्रित हैं, न किसी लिंग के। बाह्य उपाधि के कारण गुणों के प्रकाशन में, उनके प्रकट होने की पद्धति में फरक हो सकता है; लेकिन दोनों के गुणों में ही फरक है, यह मानना विचार और अनुभव के विरुद्ध है।

जो इस प्रकार के भेद को मानते हैं, वे गुणों में भेद मानते ही हैं, बल्कि दोनों की ग्रहण-शक्ति में भी अन्तर मानते हैं। कहते हैं, स्त्रियों के लिए काव्य अनुकूल है, गणित प्रतिकूल। पुरुष में पराक्रमशीलता अधिक होती है, उसकी बुद्धि की ग्रहण-शक्ति और स्वभाव के अनुकूल उसके अध्ययन के विषय होने चाहिए। इसी प्रकार स्त्रियों में सौन्दर्यभावना, करुणा आदि मृदु शक्तियाँ अधिक होती हैं। वैसी ही उनकी ग्रहण-शक्ति होती है। वैसे ही उनके अध्ययन के विषय होने चाहिए। परन्तु मैं मानता हूँ कि मूल स्वभाव और उपाधिजन्य भेद में सम्यक् विश्लेषण न होने के कारण ये भ्रम पैदा हुए हैं।

स्त्री और पुरुष में जो दैहिक भेद है, उसके स्वरूप को ठीक तरह से समझ लेना चाहिए। उसे मिटाने की न किसी की इच्छा है, न शक्ति ही है। उस बाह्य भेद का स्वरूप लोगों में जिस तरह का माना गया है, वैसा वह नहीं है। वह तो सृष्टि की केवल एक योजनामात्र है। सन्तान पैदा करने का वह एक साधनमात्र है। उसकी जड़ में पवित्र भावना है। परन्तु इस विषय का मनुष्य ने

अत्यन्त दुरुपयोग किया है। वास्तव में वह एक शास्त्रीय वस्तु है, लेकिन आज शर्म का विषय बन गया है। उस विषय में खुले तौर पर बातचीत तक नहीं हो सकती। समाज जब शास्त्रीय बनेगा, तभी इस विषय की सारी गलत धारणाएँ दूर हो सकेंगी। आज जैसा इस विषय का दुरुपयोग हो रहा है, वैसा तब नहीं होगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि इस बाह्य भेद को तो हमें भूल ही जाना चाहिए। मानव-दृष्टि से आन्तरिक अभेद की बुनियाद पर ही हमें अपने जीवन की रचना करनी होगी।

परिपूर्णता ही दोनों का जीवनोद्देश्य

स्त्री-पुरुष में एक ही पुरुष-तत्त्व, जो चेतन है समानभाव से मौजूद है और दोनों के शरीर एक ही प्रकृति-तत्त्व के बने हैं। दोनों की संसारासक्ति और संसार-बंधन समान है और मोक्ष का अधिकार भी दोनों को समान है। दोनों के जीवन का उद्देश्य भी एक ही है—परिपूर्णता प्राप्त करना।

गांधीजी युगप्रवर्तक महापुरुष थे। उन्होंने एक नया जीवन-विचार दिया कि हमारे समाज में गुणों का जो बँटवारा हो गया है, वह गलत है। अमुक जाति में अमुक गुण होने चाहिए और अमुक जाति में अमुक, ऐसा हमारे यहाँ चलता आया है। उसी तरह सत्य, अहिंसा, प्रेम वगैरह सन्तों की पूँजी मानी गयी। आम लोग सन्तों के लिए आदरभाव रखेंगे, उनकी पूजा करेंगे, लेकिन उनका अनुकरण नहीं करेंगे। लेकिन अब इस युग में गुणों का बँटवारा चलेगा नहीं। इस युग में अगर कोई स्वामी अपने सेवक का खूब अच्छी तरह पालन-पोषण करता है और दूसरी ओर सेवक भी स्वामी की सेवा अच्छी तरह करता है, तो भी हमें समाधान नहीं होगा। भर्ता यानी पति, पत्नी का उत्तम पालन-पोषण करता है और भार्या आज्ञाकारिणी और पति के कहने के अनुसार करनेवाली बनी रहती है, इस प्रकार दोनों अपने-अपने फर्ज का पूरा-पूरा पालन करते हैं, तो भी दोनों को पूर्ण विकास हुआ यह नहीं कहा जायेगा। पति को पत्नी और पत्नी को पति बनना पड़ेगा। यानी स्त्री को स्त्री और पुरुष, दोनों बनना पड़ेगा। और पुरुष को पुरुष और स्त्री, दोनों बनना पड़ेगा। तभी दोनों का पूर्ण विकास होगा।

परिपूर्ण बनने की पद्धति ही ऐसी है। उसमें पुरुष को स्त्री बनना पड़ता है और स्त्री को पुरुष! मजदूर को शिक्षित होना होता है और शिक्षित को मजदूर! हमारे आश्रम में विद्वान् को रसोईघर में काम करते देखकर कुछ लोग कहने लगे कि ऐसे विद्वान् को आप रसोईघर के काम में क्यों भेजते हैं? मैंने कहा कि मैं क्या करूँ? वह विद्वान् तो है, फिर भी उसको भूख लगती है। नहीं तो मैं उसे रसोई में न भेजता। स्त्रियों को तो रसोई का काम आता ही है। जिनको नहीं आता उन्हीं को उसका अभ्यास करना चाहिए। परिपूर्णता की ऐसी ही प्रक्रिया है।

मेरा जो जीवन बना है, उसमें पुरुषत्व से स्त्रीत्व कम नहीं है। मैं जब धुलिया जेल में था तब वहाँ कैदी भाइयों के सामने गीता पर मेरे प्रवचन हुए थे। तब स्त्री कैदियों ने भी माँग की कि हमारे लिए भी प्रवचन हों। जेल में पुरुषों को स्त्री विभाग में जाने की इजाजत नहीं होती है। परन्तु जेल के सुपरिंटेंडेंट ने कहा कि विनोबा को पुरुष मानने की जरूरत नहीं, स्त्री ही मान सकते हैं। और फिर बहनों के सामने भी प्रवचन हुए। तो पुरुषत्व और स्त्रीत्व, दोनों से मेरा जीवन बना है। यह मेरा अपना अनुभव है। ब्रह्मचर्य की साधना में पूर्णता की जरूरत है। गुणपूर्णता ही ब्रह्मचर्य है। मृदुता, भक्ति, त्याग, प्रेम, संयम, ये गुण तो स्त्रियों में हैं ही। अब उनको बुद्धि की प्रखरता और अन्य गुणों से सम्पन्न होकर पूर्ण पुरुष बनना पड़ेगा। यह एक बिल्कुल नयी दृष्टि है। हम सब भगवान् के अंश हैं। कोई छोटा नहीं, कोई बड़ा नहीं। इसी जन्म में हमें भगवान् को पाना है। परमेश्वर यानी सम्पूर्णता, परिपूर्णता। वह सम्पूर्णता हमें प्राप्त करनी है। उसके लिए बुनियाद ब्रह्मविद्या होगी।

प्राचीन भारत में स्त्री-पुरुष-समता

हमारे शास्त्र तो कहते हैं कि स्त्री और पुरुष दोनों की आध्यात्मिक योग्यता समान है। हम भगवान् का नाम लेते वक्त 'सीताराम' कहते हैं, इसलिए कि हम स्त्री-पुरुष-समता को मानते हैं इसीलिए हमारे देश में स्त्रियों को वोट का अधिकार प्राप्त करने के लिए कुछ भी करना नहीं पड़ा। इंग्लैण्ड में तो इसके लिए स्त्रियों को आन्दोलन करना पड़ा। यहाँ तो स्त्री-पुरुष में समता प्राचीनकाल से, कम-से-कम तत्त्वतः (विचार से) तो मानी गयी है, यद्यपि आचार में अभी नहीं

है और उसमें सुधार की जरूरत है। यहाँ की हवा में आध्यात्मिक अधिकार समान होने की बात प्राचीनकाल से है, प्राचीनकाल में वह आचार में भी थी।

वेद में कहा है—**वस्याँ इंद्रासि मे पितुः ... माता च मे छदयथः समा वसो**—हे इन्द्र, तू हमारे पिता से बढ़कर हे। हे ईश्वर, तू और मेरी माँ, ये दो ही ऐसे हैं, जो मेरे पापों को, अपराधों को ढाँकते हैं, तुम दोनों समान हो! इसलिए कहा है, **त्वमेव माता च पिता त्वमेव**। इसमें प्रथम माता का नाम आया है। उपनिषदों ने आज्ञा दी, उसमें नम्बर एक में कहा है—**मातृदेवो भव**। बाद में **पितृदेवो भव**, **आचार्यदेवो भव**, **अतिथिदेवो भव** कहा। माता को पहला देव माना। शास्त्रों ने यह भी कहा, **जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी**—जननी और जन्मभूमि, दोनों स्वर्ग से भी बढ़कर हैं। इसके अलावा मनु ने तो गाया ही है—

उपाध्यायान् दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता

सहस्त्रं तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते (मनु २.७९)

—माता हजारों पिताओं से भी बढ़कर है। एक ऋषि ने अपने ज्ञान के बारे में बतलाते हुए कहा है—**मातृमान् पितृमान् आचार्यवान बूयात्** (बृह. ७९) यानी जैसे माता, पिता और गुरु बतलाते हैं, वैसा यह ज्ञान है। अर्थात् पहला ज्ञान देने का गुरुत्व माता को सौंपा गया। ज्ञानदेव का अभंग है कि शिशु को पालने में सुलाकर पालना हिलाते-हिलाते मदालसा ने अपने बच्चे को वेदान्त सिखाया। माता में इतनी शक्ति भरी है। इसलिए मैंने भी गीता का जो मराठी अनुवाद किया है, उसको नाम दिया, गीताई—यानी गीतामाता!

शंकराचार्य का भी एक वाक्य है, **कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति**—कोई कुपुत्र पैदा हो सकता है, लेकिन माता कभी कुमाता नहीं हो सकती। शंकराचार्य परिव्राजक थे। फिर भी अपनी माता को उन्होंने वचन दिया था कि तुम्हारे आखिरी दिनों में तुम्हारा दर्शन करने आऊँगा, क्योंकि माता के लिए उनको बहुत आदर था। तब तक उन्होंने क्षेत्रसंन्यास नहीं लिया। माता के अन्तिम समय उसका दर्शन किया और उसका अन्तिम संस्कार करने के बाद फिर

बदरीकेदार जाकर क्षेत्रसंन्यास लिया। मतलब यह है कि उन्होंने संन्यास लेने के बाद भी मातृविषयक कर्तव्य पूरा किया। इतना मातृगौरव हमारे देश में था।

जहाँ तक हमें हिन्दूधर्म का ज्ञान है, स्त्री की बहुत इज्जत थी और स्त्रियों को ज्यादा अधिकार दिये गये थे। उन्हें पूर्ण स्वातंत्र्य था। शादी करनी है या नहीं, यह तय करने का अधिकार उनको था। शादी न करने का अधिकार जितना पुरुष को था, उतना ही स्त्री को था। जैसे पुरुष ब्रह्मवादी हो गए हैं, वैसे ही स्त्रियाँ भी ब्रह्मवादिनी हो गयी हैं। वेद में ब्रह्मवादिनी स्त्रियों का उल्लेख है। स्त्रियों के कुछ सूक्त वेदों में आते हैं। ऋषिकन्या वागांभूणी का एक सूक्त है, **अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां**—मैं राष्ट्रदेवता हूँ, सब-के-सब राष्ट्र मेरी आज्ञा में चलते हैं, मैं सब मंगलता को एक करती हूँ। कुछ ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ परमेश्वर के साथ इतनी एकरूप हो गयी थीं कि उनका गौरव करते समय वे कहती हैं कि परमेश्वर की कृति मेरी ही कृति है। उन्होंने गाया है कि "सृष्टि के सारे प्राणी मेरे आश्रय में रहते हें, परन्तु वे जानते नहीं। वे सब मेरा आधार लेकर ही काम करते हैं।" उसी प्रकार गाया है, "मैं जिन्हें ऊपर चढ़ाना चाहती हूँ, उन्हें ऊपर चढ़ाती हूँ, जिन्हें ऋषि बनाना चाहती हूँ, उन्हें ऋषि बनाती हूँ। परमेश्वर का कर्तृत्व मेरा कर्तृत्व है।" वे परमेश्वर का रूप लेकर बोलती हैं।

अक्षमताएँ लादी गयीं

परन्तु अर्वाचीन हिन्दूधर्म में स्त्रियों के लिए ब्रह्मचर्य माना नहीं गया। कोई एकआध मीराबाई या मुक्ताबाई निकलीं, जो बगावत करके ब्रह्मचारी रहीं, लेकिन अर्वाचीन धर्म ने स्त्रियों के ब्रह्मचारी रहने के लिए अनुमति नहीं दी।

इसका एक सामाजिक कारण है। अकसर देखा गया है कि हिन्दुस्तान में १००० पुरुषों के पीछे कोई ९३४ स्त्रियाँ हैं (१९८१ की जनगणनानुसार)। इसका मतलब यह हुआ कि एक पुरुष एक स्त्री के साथ शादी करे तो भी ६६ पुरुषों को अविवाहित रहना पड़ेगा। इस वास्ते नियम ही बना दिया कि स्त्रियों की शादी करनी चाहिए। मान लीजिए कुछ स्त्रियाँ ब्रह्मचारी रहती हैं, तो और

कठिन परिस्थिति हो जायेगी। इसलिए समाजशास्त्र की दृष्टि से स्त्री का गुरुगृह पति का घर और गुरु पतिदेव माना गया। अर्थात् यह शास्त्र पुरुषों ने ही बनाया।

हिन्दूकोड बिल संविधान सभा में आया, तब उस पर बहुत चर्चा चली। लड़की का पिता की जायदाद पर हक नहीं रहना चाहिए, ऐसा कहनेवाले दलील देते थे कि लड़की को दोनों ओर का हक क्यों मिलना चाहिए? विवाह होने पर उसे पति की ओर से कुछ-न-कुछ मिलेगा ही। अर्थात् ऐसी भूमिका कोई लेने को ही तैयार नहीं कि एकाध लड़की अविवाहित रह सकती है। उनको लगता है कि लड़की को तो यहाँ से वहाँ जाना ही है। इसका अर्थ यह है कि स्त्रियों को केवल गृहस्थाश्रम का ही अधिकार माना, अन्य आश्रमों का नहीं। प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थ में कहा है, **दुहिता पंडिता जायेत**... यानी जो यह चाहते हैं कि उनकी कन्या पण्डित बने, उन्हें अमुक-अमुक करना चाहिए। इसका अर्थ शंकराचार्य ने भाष्य में क्या किया हे, उसे जरा देखिए। जिन शंकराचार्य के प्रति आदर से मेरा आपादमस्तक भरा है, उन्होंने उसका अर्थ किया है, **पण्डिता गृहकार्यकुशला इत्यर्थः**—पण्डिता यानी गृहकार्य में कुशल। वे इसको कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि लड़की स्वतंत्ररूप से पण्डिता हो सकती हे। लड़की के संन्यासिनी होने की कल्पना भी वे नहीं कर सकते थे। इसलिए उन्होंने वैसा अर्थ किया। स्त्रियाँ गृहकार्य कुशल हों, इससे मेरा कोई विरोध नहीं है। वे वैसा नहीं होंगी, तो देश को कोई लाभ नहीं होगा। परन्तु 'गृहकार्यकुशला' में ही उनके पाण्डित्य की परिसमाप्ति हो, यह ठीक नहीं है।

मेरी माँ बचपन में एक मजेदार कहानी सुनाती थीं। कहती थीं, (विन्या, बच्चे पैदा करना, सँभालना कितना कठिन है यह तू नहीं जान सकता। पहले यह काम शंकर के पास था। पर वे ऊब गये और पार्वती से कहा कि वह चार दिन के लिए यह कार्य सँभालें। तब से यह कार्य उसके सुपुर्द हुआ और उसी के गले में आ पड़ा। शंकर ने उसे वापस लिया ही नहीं।' तो यह कार्य स्त्री को दैव से ही मिला है, इसलिए इसे गृहकार्य में प्रवीण होना ही पड़ेगा, इसमें शक नहीं। परन्तु उस पर जो आध्यात्मिक अनधिकार लादा गया है, वह हटना ही चाहिए।

इस तरह हिन्दुस्तान में मध्ययुग में और अर्वाचीन काल में हिन्दूधर्म ने स्त्रियों पर बहुत-सी अक्षमताएँ लादी हैं। इन अक्षमताओं को इतना स्वाभाविक माना गया कि स्त्रियों को वे चुभती भी नहीं। लेकिन वे चुभने लायक हैं, चुभनी चाहिए। स्त्री को वैराग्य का अधिकार नहीं, वेदपठन का अधिकार नहीं। सन् १९६० की बात है। हमारी एक लड़की काशी के संस्कृत विद्यालय में गयी और कहा कि मैं वेद की ध्वनि सीखना चाहती हूँ। तो वहाँ के लोगों ने इनकार कर दिया कि बहनों को वेद के उच्चारण का अधिकार नहीं। वेद के उत्तमोत्तम ग्रन्थ जर्मन भाषा में छपे हैं। रशियन, फ्रेंच, इंग्लिश भाषाओं में वेद छपे हैं। हरएक उच्चारण का भी विश्लेषण हुआ हे। अपने देश में नागरी लिपि में भी छापे हैं। इतना सब हो चुका। फिर भी आज भारतीय महिला को वेद-ध्वनि सिखाने से इनकार किया जाता है। यह स्त्रियों के लिए मानी हुई एक अक्षमता का नमूना है।

स्त्रियों को ब्रह्मचर्य और संन्यास का अधिकार भी नहीं है। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कह दिया कि मोक्ष तो परम पुरुषार्थ है, इसलिए स्त्रियों को मोक्ष, जब वह दूसरा जन्म पुरुष का लेंगी तभी मिलेगा। इस जन्म में वे भक्ति कर सकती हैं—पतिदेव की भक्ति कर सकती हैं, प्रभु-उपासना कर सकती हैं। उसके आधार पर उनकी चित्तशुद्धि हो सकती है और चित्तशुद्धि के द्वारा उनको अगला जन्म पुरुष का प्राप्त हो सकता है।

ये अक्षमताएँ प्राचीन ग्रन्थों में देखने को नहीं मिलतीं, बीच के ग्रन्थों में मिलती हैं। दूसरे धर्मग्रन्थों में भी मिलती हैं। न्यू टेस्टामेंट में पढ़ने में आया कि पुरुष अपने सिर पर बाल न रखे तो कोई बात नहीं, क्योंकि पुरुष के सिर पर तो भगवान् है, परन्तु स्त्री को बाल जरूर रखने चाहिए, क्योंकि स्त्री के सिर पर पुरुष है। सार यह है कि कई कारणों से दो-ढाई हजार साल में स्त्रियों के लिए अपने देश में बहुत ही ज्यादा, और दूसरे देशों में कुछ हद तक, अक्षमताएँ रहीं। उन सब अक्षमताओं को हटानेवाली स्त्रियाँ निकलेंगी तब यह देश आगे बढ़ेगा। ये आध्यात्मिक अक्षमताएँ बहुत गलत हैं, ऐसा अपने आचरण से और विचारों से स्त्रियाँ सिद्ध करेंगी और सारे भारत पर उसका असर डालेंगी, तब स्त्रियाँ ऊपर चढ़ेंगी और हिन्दुस्तान की प्रगति होगी। ये सारी अक्षमताएँ कानून से जानेवाली नहीं हैं। वह स्वयं स्त्रियों को ही पराक्रम कर निकालनी पड़ेंगी।

रोमन कैथोलिक, जैन सम्प्रदायों में स्त्रियों को संन्यास का अधिकार दिया है, लेकिन मुक्ति का अधिकार नहीं दिया। मुझे यह मनोरंजक मालूम होता है। अगर कोई कहेगा कि स्त्रियों को वैकुण्ठ में प्रवेश नहीं है या इन्द्रसभा में प्रवेश नहीं है तो मैं समझ सकता हूँ। इन्द्र का वैसा नियम होगा तो वहाँ प्रवेश नहीं दिया जा सकता। लेकिन मुक्ति तो अनुभव की वस्तु है। मरने के बाद प्राप्त होने की वस्तु नहीं है। अगर मुझे स्त्री होने के नाते कोई शास्त्र गाढ़ निद्रा का अधिकार नहीं देगा, तो वह बात निरर्थक होगी। गाढ़ निद्रा आना, न आना मेरे अपने हाथ की बात है। वैसे मुक्ति भी अपने अनुभव की बात है। मान लीजिए, मैं स्त्री हूँ। मेरे मन में राग, द्वेष, मोह किसी प्रकार का अनुभव नहीं आता, चौबीसों घण्टे प्रसन्नता का अनुभव रहता है, रात-दिन प्रसन्न रहता हूँ, हँसता रहता हूँ, विनोद करता रहता हूँ। ऐसी स्थिति है तो मुक्ति मुझे प्राप्त हो चुकी। मुझे यह अनुभव आये या न आये, यह अलग बात है, पर वह मुझे देने या न देने का आपको क्या अधिकार? कोई कहे कि आपको आरोग्य का अधिकार नहीं, तो क्या वह किसी ने किसी को देने की बात है? वह तो मेरे अपने हाथ की बात है। तो जैसे आरोग्य या गाढ़ निद्रा मेरे अपने अनुभव की बात है, लोगों के देने का सवाल नहीं है, किसी को लेने या देने का अधिकार नहीं है, वैसे ही मुक्ति का है—वह अपने हाथ में है। वह मरने के बाद प्राप्त करने की वस्तु नहीं है, जीवन में अनुभव करने की बात है।

स्वयं अपना उद्धार करें

आज प्राचीन स्त्रियों जैसी स्त्रियाँ स्वप्नवत् हो गयी हैं। आज किसी स्त्री का प्रभाव समाज पर पड़ता हो, ऐसा दीखता नहीं। आज उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व ही नहीं रहा। आज वे स्वतन्त्र रूप से जीती ही नहीं हैं। इसीलिए किसी की पत्नी, किसी की बहन के नाते ही उनका परिचय दिया जाता है। उन्हें कुछ सुख-सुविधाएँ दी जाती हैं। वे स्कूलों में अध्यापिका बनती हैं, दफ्तरों में काम करती हैं। कानून से पुत्री को पुत्र के बराबरी का हक मिलता है। पुरुषों के साथ बराबरी से काम करती हैं। सिगरेट भी पी सकती हैं। हाथ में बन्दूक भी ले सकती हैं। मतदान का अधिकार

भी उन्हें मिला है। परन्तु इतने सारे अधिकार उन्हें भले ही मिल गये हों, इनसे उनका उद्धार होनेवाला नहीं है। उनका उद्धार तो तभी होगा जब वे आध्यात्मिक अधिकार प्राप्त करेंगी।

सभी सम्प्रदाय यही मानते हैं कि स्त्री का सीधा सम्बन्ध परमेश्वर के साथ नहीं है। बाइबिल की बात तो मैंने कही ही कि वहाँ आता है कि स्त्रियों के सिर पर पुरुष और पुरुष के सिर पर परमेश्वर है। बीच की एजेन्सी के द्वारा ही स्त्री परमेश्वर के निकट पहुँच सकती है। यह बात हिन्दू धर्म में भी है। पत्नी पति के हाथ से हाथ मिलाती है, तो उसके हाथ से भी धार्मिक कार्य हो गया, ऐसा माना जाता है। यानी इंजीन के साथ डिब्बा जोड़ा गया। अब इंजीन जहाँ जायेगा, वहाँ डिब्बा जायेगा। डिब्बे में चाहे अमरूद, केले, अंगूर भरे हों और इंजीन में चाहे कोयला हो तो भी इंजीन तो इंजीन ही है। वह डिब्बों को अपनी गति के साथ खींचता है और इंजीन की गति के आधार पर ही डिब्बों की गति निश्चित होती है। इसी तरह कोई स्त्री गांधी के साथ, कोई कृष्ण के साथ जोड़ी जाती है और उसे सहगति मिलती है। स्वतंत्र गति उसे नहीं है। उसकी गति दूसरे पर ही अवलम्बित है। स्त्रियाँ जब निष्ठावान बनेंगी, शास्त्र में परिवर्तन करनेवाली होंगी, मानवता का नया शास्त्र बनायेंगी तब स्त्री का और मानव-धर्म का भी उद्धार होगा। उस शास्त्र में स्त्री-पुरुष का कोई भेद नहीं होगा।

संन्यास, ब्रह्मचर्य, परिव्रज्या की इजाजत हो तो हजारों स्त्रियाँ संन्यासी बनेंगी, ऐसी बात नहीं। आज पुरुषों को इसकी इजाजत है, तो क्या हजारों पुरुष संन्यासी, परिव्राजक बन रहे हैं? परन्तु इजाजत ही नहीं होना, एक अक्षमता (डिसएबिलिटी) होना प्रगति के लिए रुकावट पैदा करता है। बीच में, कलियुग में, संन्यास केवल स्त्री के लिए नहीं सभी के लिए वर्जित माना गया था। इस पर प्रहार शंकर-सम्प्रदाय से हुआ। शंकराचार्य के गुरु संन्यासी थे। वे पहले गृहस्थाश्रमी थे और बाद में उन्होंने संन्यास लिया। परन्तु शंकराचार्य ने तो ब्रह्मचर्याश्रम से सीधे संन्यास ले लिया। इसका समाज ने बहुत विरोध किया। आज हम शंकराचार्य का अत्यन्त गौरव गाते हैं। हिन्दू धर्म पर श्रीकृष्ण भगवान् के बाद सबसे ज्यादा असर यदि किसी का हुआ है तो वह शंकराचार्य का हुआ है। उनके भाष्य, स्तोत्र आदि देशभर में सर्वत्र पढ़े जाते हैं। परन्तु उनके रहते जो हालत

थी, उसका ख्याल तक हम नहीं कर सकते। नंबूद्री ब्राह्मणों की तरफ से शंकराचार्य का बहिष्कार था, जैसे टॉल्स्टॉय का पोप की तरफ से बहिष्कार था, या जैसे गांधीजी को हिन्दूधर्म का शत्रु समझा गया। बहिष्कार के कारण माँ की श्मशान यात्रा के लिए एक भी मनुष्य नहीं आया। शव उठाने के लिए कोई नहीं आया, तो शंकराचार्य ने माँ के शव के तलवार से तीन टुकड़े किये और एक-एक टुकड़ा ले जाकर जलाया। वे अत्यन्त प्रखर ज्ञानी थे, ऐसे प्रसंग पर भी वे पिघले नहीं। आज शंकराचार्य के लिए इतना आदर है कि नंबूद्री ब्राह्मणों में उनकी स्मृति में जलाने के पहले लाश पर तीन लकीरें खींची जाती हैं। शंकराचार्य को संन्यास का हक प्राप्त करने के लिए इतना करना पड़ा। इसी तरह एक-एक हक प्राप्त करना होता है।

आज भी समाज में पुरुषों की ही सत्ता अधिक है। कारण जिन्होंने स्त्रियों के लिए कार्य किया—कृष्ण भगवान्, महावीर स्वामी, गांधीजी, दयानन्द सरस्वती आदि वे सब-के-सब पुरुष हैं, इसलिए वे ज्यादा कुछ नहीं कर सके। यह काम स्त्रियों को स्वयं करना होगा, तभी भलीभाँति हो सकेगा अनुभव का एक सिद्धान्त है कि प्राणी का उद्धार प्राणी के आत्मबल से ही होता है। परमेश्वर की मदद उसी को मिलती है, जो स्वयं कोशिश करता है। उसके मन में जब अत्यन्त तीव्रता दीखती है, तभी परमेश्वर भी मदद करता है। तीव्रता न हो, प्रयत्न में तड़पन न हो, तो भक्ति नहीं होती। जब तीव्रता होती है, इच्छाशक्ति होती है तब भक्ति होती है। और परमेश्वर मदद करता है। यों तो सबका उद्धारक वही है, परन्तु जो अपने उद्धार के लिए तीव्र इच्छा रखता है और प्रयत्न करता है, उसी की वह मदद करता है। इसलिए स्त्रियों का उद्धार तभी होगा जब वे जागेंगी और प्रयत्न करेंगी।

तीन उद्धारक

जहाँ तक मुझे मालूम है, स्त्रियों के उद्धार के लिए हिन्दुस्तान में जो प्रयत्न हुए, उनमें प्राचीन काल में भगवान् श्रीकृष्ण और भगवान् महावीर के नाम आते हैं तथा अर्वाचीन काल में गांधीजी का नाम आता है। बीच का सारा काल शुष्क गया, ऐसा तो नहीं है, उसका भी एक इतिहास है। लेकिन ये तीन नाम भुलाये नहीं जा सकते।

भगवान् श्रीकृष्ण ने स्त्रियों के लिए जो कुछ किया, उसकी गुणगाथाएँ हिन्दुस्तानभर में पाँच हजार साल से लगातार गायी जा रही हैं। द्रौपदी का सभा में वस्त्रहरण हो रहा था तब उसने श्रीकृष्ण का स्मरण किया। इसके तीन श्लोक हैं। ये तीन श्लोक मनुष्य को संसार-समुद्र पार कराने के लिए समर्थ हैं, ऐसा माना जाता है। उसमें भगवान् के जो सम्बोधन आये हैं, उनमें एक है, **हे गोपीजनप्रिय**! जो गोपियों को प्रिय है, जिस पर गोपियों का प्यार है और जिसका गोपियों पर प्यार है। गोपियों के साथ श्रीकृष्ण के जो सम्बन्ध थे, उन सम्बन्धों को स्मरण करके शुकदेव जैसे परम ब्रह्मचारी, परम संन्यासी भी पावन हुए। लेकिन कवियों ने उसका विकृत वर्णन किया इसलिए उस विषय में हिन्दुस्तान में एक गलत धारणा बन गयी। परन्तु सतीत्व की रक्षा के लिए, पावित्र्य की रक्षा के लिए द्रौपदी प्रार्थना करती है, और तब इस सम्बोधन का उपयोग करती है, इसका मतलब हे कि श्रीकृष्ण का गोपियों के साथ जो सम्बन्ध था, उससे अधिक पवित्र सम्बन्ध हो नहीं सकता। श्रीकृष्ण का गोपियों पर जो प्रेम था, स्त्रियों के लिए मन में जो इज्जत थी और बन्धु के नाते स्त्रियों के लिए वे जो काम करते थे, वह हिन्दुस्तान के इतिहास में अद्वितीय है। समूचा भागवत इसी एक कथा पर खड़ा है।

महावीर का इतिहास एक अद्भुत इतिहास है। आध्यात्मिक अधिकारों में महावीर ने कोई भेद-बुद्धि नहीं रखी। परिणामस्वरूप उनके शिष्यों में श्रमणों से ज्यादा श्रमणियाँ थीं। वह प्रथा आज तक जैन-सम्प्रदाय में चली आयी है।

महावीर के चालीस ही साल के बाद गौतम बुद्ध हुए, जिन्होंने स्त्रियों को संन्यास देना उचित नहीं माना था। स्त्रियों को संन्यास देने में धर्म-मर्यादा नहीं रहेगी, ऐसा अंदेशा उनको था। एक दिन उनका शिष्य आनन्द एक बहन को ले आया और उसने भगवान् बुद्ध से कहा, यह बहन आपके उपदेश के लिए सर्वथा पात्र है, आप इसे संन्यास का उपदेश दें। तब बुद्ध भगवान् ने उसे दीक्षा दी और कहा, “हे आनन्द, तेरे आग्रह और प्रेम के कारण यह कर रहा हूँ, लेकिन इससे अपने सम्प्रदाय के लिए मैंने बड़ा खतरा उठाया है।” बौद्ध धर्म का इतिहास पराक्रमशाली है, देश के लिए अभिमान रखने लायक हे। लेकिन जो डर बुद्ध को था, वह महावीर को नहीं था कहना पड़ेगा कि

गौतम बुद्ध को व्यावहारिक भूमिका छू गयी और महावीर को वह छू न सकी। उन्होंने स्त्री-पुरुष में तत्त्वतः भेद नहीं रखा। वे अत्यन्त दृढ़प्रतिज्ञ रहे।

रामकृष्ण परमहंस के सम्प्रदाय में स्त्री सिर्फ एक ही थी और वे थीं श्रीशारदादेवी। वे रामकृष्ण की पत्नी थीं—नाममात्र की पत्नी थीं। वैसे वे उनकी माता ही हो गयी थीं तथा सम्प्रदाय के सभी भाइयों के लिए मातृस्थान में थीं। लेकिन एक ही स्त्री थी, जिसने दीक्षा ली हो! अब तक वहाँ भी स्त्रियों को दीक्षा नहीं मिलती थी, लेकिन अब दी जा रही है।

श्रीकृष्ण ने जो काम किया वह संन्यास-दीक्षा का नहीं था। वह था कि स्त्री-पुरुष भक्ति-भावना में समान रहें और अनासक्ति तथा निर्लेपभाव से आपस में किसी प्रकार का संकोच न रखें। यह जीवन का एक बुनियादी विचार है। सर्वसामान्य गृहस्थाश्रम में भी संकोच न रहे, एक-दूसरे के साथ भाई-बहन की तरह मिलते रहें, यह श्रीकृष्ण ने बताया। इस जीवन-दृष्टि से श्रीकृष्ण ने काम किया। लेकिन तत्त्व-विचार की दृष्टि से मुझे महावीर स्वामी का इतिहास अद्वितीय लगता है।

गांधीजी ने तो स्त्रियों की सारी शक्ति ही खोल दी। गांधीजी के कारण अहिंसारूपी शस्त्र सामने आया। यह शस्त्र पुरुष जितना इस्तेमाल कर सकते हैं, उससे ज्यादा स्त्रियाँ कर सकती हैं। स्वराज्य आन्दोलन की बात है। चर्चा चल रही थी कि शराब की दुकान पर पिकेटिंग करने का कया इन्तजाम किया जाय। किसी ने कुछ सुझाया तो किसी ने कुछ। गांधीजी ने सुझाया कि यह काम स्त्रियों का होना चाहिए। लोग सुनते ही रहे कि गांधीजी क्या बोल गये। जहाँ बिल्कुल अनीतिमान लोग जाते हैं और सब प्रकार का बुरा बर्ताव चलता है, ऐसे लोगों के बीच स्त्रियाँ क्या करेंगी? लेकिन गांधीजी ने कहा कि वहाँ स्त्रियाँ ही काम करेंगी। जो सबसे गिरे हुए लोग हैं, उनके खिलाफ हमारे पास जो ऊँची-से-ऊँची नैतिक शक्ति है, वही भेजी जानी चाहिए। तो स्त्रियाँ वहाँ गयीं और उन्होंने जो काम किया, वह सारे भारत ने देखा।

एकबार अण्णसाहब कर्वे वर्धा आये थे। वे बोले कि 'गांधीजी ने जादू कर दिया। स्त्रियों की उन्नति के लिए २५-२५ साल मेहनत करके जो काम हम नहीं कर सके और जिसकी कल्पना नहीं

कर सके, वह चीज गांधीजी ने कर दी।' यह गांधीजी ने क्या किया, यह तो अहिंसा ने किया! जब तक आपका शस्त्र हिंसा रहेगा, तब तक दुनिया में आप कितने भी तत्त्व लायें, स्त्रियों का स्थान दोयम दर्जे का ही रहेगा। कितनी भी कोशिश करें, उन्हें अव्वल स्थान नहीं मिल सकता। इसलिए अगर स्त्रियों को अव्वल स्थान देना हो तो यह जरूरी है कि रक्षण का साधन अहिंसा हो। इससे मातृशक्ति को स्थान मिलेगा। बुद्ध और महावीर के जमाने में स्त्रियों का उद्धार हुआ और गांधीजी के कारण स्त्रियों का उत्थान हुआ, क्योंकि इन लोगों ने रक्षण-शक्ति अहिंसा मानी, हिंसा नहीं। हिंसा तो भक्षण-शक्ति है। अहिंसा और शान्ति की मूर्ति तो स्त्री ही है!

स्त्री स्वरक्षित बने

परन्तु सदियों से माना गया है कि स्त्रियों की रक्षा का भार पुरुषों पर है। जब तक यह भावना, यह मान्यता कायम रहेगी तब तक सही अर्थ में स्त्रियों की रक्षा होना असम्भव है। वास्तव में स्त्री को रक्षा की जरूरत है, यह मानना ही गलत है। फिर भी वैसा माना गया; क्योंकि उसके पास हिंसा के पर्याप्त साधन नहीं हैं। हिंसा के क्षेत्र में स्त्री, पुरुष की अपेक्षा कमजोर पड़ जाती है। इसलिए वह रक्षित हे गयी—पुरुषों के द्वारा रक्षित! किसी ने यह नहीं सोचा कि वह स्वरक्षित हो! वह रक्ष्य ही समझी गयी। अर्थात् इसमें हिंसा की प्रतिष्ठा स्वीकार की गयी है। परन्तु आज की परिस्थिति हमें साफ दिखा रही है कि हमें अब हिंसा की नहीं, अहिंसा की प्रतिष्ठा स्थापित करनी होगी। अहिंसक समाज में स्त्री रक्ष्य नहीं रहेगी, स्वरक्षित होगी।

संस्कृत कवियों ने स्त्री को 'भीरु' कहा है। भीरु यानी 'पापभीरु' होता है, तो वह एक उत्तम विशेषण होता है। भीरु यानी 'कायर' विशेषण उन्होंने प्रशंसा के रूप में स्त्रियों को भेंट किया है। देनेवाले ने भले ही प्रशंसा के रूप में दिया हो, परन्तु लेनेवाले ने स्वीकार क्यों किया? उसने स्वीकार किया है, इतना ही नहीं, सहर्ष स्वीकार किया है। बहनें कहेंगी कि यह सब पुरुषों ने किया है। तब तो जड़-चेतन की बात आप मानती हैं, यही अर्थ होगा। क्या सचमुच पुरुष चेतन और स्त्री जड़ है? तब तो किसी घड़ी की तरह वह उसे जैसा रखे, वैसा रहिए।

जब बहनें मुझसे पूछती हैं कि हम अपना रक्षण कैसे करें, तो मैं कहता हूँ कि इसमें आपको कुछ सोचना ही नहीं है। हमें स्त्री और पुरुष में फर्क ही नहीं करना है, दोनों को परिपूर्ण बनाना है। इसलिए अपने हृदय में ऐसी श्रद्धा रखें कि जैसे पुरुष अपनी रक्षा करने में सहज ही समर्थ माना जाता है, यद्यपि कई दफा वैसा वह कर नहीं पाता, वैसे ही आप भी अपना रक्षण स्वयं कर सकती हैं। तब बहनें कहती हैं कि पुरुषों के पास तो पिस्तौल होती है। तो मैं कहता हूँ कि अगर वही आपकी कमी है तो आप भी पिस्तौल रख सकती हैं। जो हक पुरुषों को है वह आपको भी होना ही चाहिए। लेकिन हर हालत में आपको निर्भय बनना ही होगा। मुझे विश्वास नहीं है कि पिस्तौल रखने से निर्भयता आ सकती है। निर्भय आदमी के हाथ में पिस्तौल भी काम दे जाय, यह दूसरी बात है। लेकिन यदि यह विश्वास है कि पिस्तौल लेकर अपना नूर बता सकते हैं, और यह समझते हैं कि पिस्तौल के आधार पर ही समाज की रचना होनी चाहिए, तो फिर स्त्री-पुरुष दोनों के लिए यह क्षेत्र खुला रहना चाहिए, जैसे पश्चिम में है। मेरा मानना है कि हिंसा का नहीं अहिंसा का प्रयोग करने में ही स्त्रियाँ अग्रसर हो सकती हैं। लेकिन वैसा करने में अगर वे अपने को असमर्थ पायें तो दोनों में फर्क तो होना ही नहीं चाहिए। ऐसी हालत में स्त्रियाँ अपने पास रिवाल्वर रख सकती हैं। कोई आक्रमण करने आये तो उस पर गोली चला सकती हैं। मेरी तरफ से स्त्रियों को पिस्तौल रखने का अधिकार दिया गया है, बशर्ते उससे वे निर्भय बनती हों।

आत्मबल पर निर्भर रहें

हमें यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि आत्मा के बल पर स्त्री हर परिस्थिति में अपनी रक्षा करने में समर्थ है। शरीर-बल पर निर्भर रहने के बजाय आत्मा के बल पर जीने की कला हम सभी को सीख लेनी चाहिए। मैं मानता हूँ कि जिसे सतत जीवनभर निष्ठापूर्वक सेवा करनी है, उसे आत्मज्ञान की बात अवश्य समझ लेनी चाहिए। आज आत्मज्ञान शब्द हमें बहुत भारी लगता है। परन्तु यह वस्तु इतनी सरल और आसान है कि एक छोटा-सा बच्चा भी इसे समझ सकता है। गणित सीखना कुछ कठिन हो सकता है, लेकिन आत्मज्ञान तो गणित से भी सरल है।

वर्डस्वर्थ की 'वी आर सेवन' कविता में एक बालिका अपने मरे हुए भाई को गिनकर कहती है कि हम सात हैं। आत्मा की अमरता का ज्ञान उसे सहज-प्राप्त है।

यह बात समझ लेना (और समझ लिया तो उस पर अमल करना) कठिन जाता है। क्योंकि आज हमारा समूचा जीवन शरीरप्रधान बन गया है। हम चाहे सुन्दरता के बारे में सोचते हों, चाहे बल के बारे में, हमारी दृष्टि शरीरप्रधान ही रहती है। जब तक शरीरपरायणता बनी रहेगी तब तक स्त्रियों के चित्त में भय सदा बना ही रहेगा। जुल्मियों ने लोगों की इस शरीरपरायणता का बहुत लाभ उठाया है। इसी में से भय पैदा होता है। जब तक भय का स्पर्श नहीं होगा तब तक मनुष्य पाप से दूर रहेगा। भय के कारण ही पाप होता है। इसलिए निर्भयता सबसे बड़ा गुण है। स्त्रियों को निर्भय बनना चाहिए। बल्कि मुझे तो निर्भय शब्द भी उतना पसन्द नहीं है। उसमें भी मुझे भय की बू आती है। भय से अपरिचित बालक निर्भय शब्द को नहीं समझेगा। इसलिए मैंने 'आत्मनिष्ठ' शब्द का प्रयोग किया। बहनों में आत्मनिष्ठा बढ़े, यही मेरी भावना है।

रामायण में हम सीताजी का वर्णन पढ़ते हैं रावण उनसे शरारतभरी बातें करता था। वे उससे बोलती भी नहीं थीं। केवल एकबार बोलीं, वह भी घास का एक तिनका बीच में रखकर। उसके द्वारा उन्होंने यह बताना चाहा कि, हे रावण, मैं तुझे घास के इस तिनके के समान मानती हूँ। रावण उनका कुछ बिगाड़ नहीं सका। सीता का उदाहरण असाधारण है, ऐसा नहीं मानना चाहिए। ऐसा होता तो इस तरह की मिसाल हमारे सामने रखी जाती? प्रधानमंत्री हर कोई नहीं बन सकती, लेकिन सीता तो हर कोई बन सकती है; क्योंकि वह आत्मा का विषय है। आत्मा के बल पर निर्भर रहनेवाले व्यक्ति की आँखों में जो निर्भयता का तेज होता है, वह दूसरे को प्रभावित किये बिना नहीं रहता। पशु तक आँख के उस तेज को पहचान लेते हें।

वाल्मीकि और नारद की कहानी तो सब जानते हैं। पूर्व जीवन में वाल्मीकि ने कितने ही लोगों की हत्या की, परन्तु नारद के जैसा निर्भय मनुष्य तब तक उसे नहीं मिला था। तब तक उसको जितने भी लोग मिले वे ऐसे थे, जो या तो डरकर भाग जाते थे या उलटकर हमला करते थे। नारद की तरह हँसकर विवेक की बात करनेवाला उसने पहली बार देखा था। नतीजा यह हुआ

कि जो मनुष्य पहले एक हिंसक भील था, वह महान् ऋषि बन गया। इस कहानी में जीवन का एक महान् सिद्धान्त भरा हुआ है। अगर हम निर्भय और शान्त रहें तो हम पर आक्रमण करने के लिए उठाया हुआ हाथ वहीं-का-वहीं रह जायेगा। इसलिए हमें आत्मशक्ति पर निर्भर रहना चाहिए।

स्त्रियों में इस आत्मशक्ति की कोई कमी नहीं है। परन्तु उसे प्रकट करने के लिए जीवन को उसके अनुकूल बनाना होगा। खाने के लिए जीना नहीं होगा, जीने के लिए खाना होगा। मतलब उसमें भोग और विलास को स्थान नहीं है। भोग और विलास से भरा जीवन वक्त पड़ने पर कायर ही बन जाता है। इसलिए अब स्त्री को ऊपर उठना है तो उसे संयम की, ब्रह्मचर्य की साधना करनी होगी।

ब्रह्मचर्य की साधना

ब्रह्मचर्य भारतीय संस्कृति का खास विषय माना जायेगा। यद्यपि दुनिया के सब समाजों में इस पर विचार हुआ है और प्रयोग भी। हिन्दुस्तान के साहित्य और संस्कृत भाषा में ब्रह्मचर्य के बारे में जितना आदर तथा गहरा चिन्तन मिलता है, उतना अन्यत्र नहीं। गीता में शारीरिक तप में ब्रह्मचर्य और अहिंसा, दोनों आते हैं। विषय-वासना बढ़ाते जायँ और मानें कि अहिंसा रहे, तो वह होगा नहीं। इसीलिए महावीर और बुद्ध ने अहिंसा के साथ-साथ ब्रह्मचर्य और तृष्णा-त्याग पर जोर दिया है। पतंजलि ने पंच महाव्रतों में अहिंसा के साथ ब्रह्मचर्य को रखा है।

ब्रह्मचर्य में हमारे सामने कोई निगेटिव बात नहीं रखी गयी है, बल्कि पॉजिटीव बात ही रखी गयी है। ब्रह्मचर्य की साधना का अर्थ है सर्वाधिक विशाल ध्येय अर्थात् ब्रह्म के यानी परमात्मा के साक्षात्कार का ध्येय सामने रखकर उस खोज में अपना जीवन-क्रम रखना।

किसी अन्य विशाल ध्येय के लिए भी ब्रह्मचर्य की साधना की जा सकती है। जैसे भीष्म ने किया। भीष्म ने अपने पिता के लिए ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा की थी और जिन्दगीभर उसका अच्छी तरह से पालन किया। आगे चलकर वे उस चीज की आध्यात्मिक गहराई में उतरे। बड़े आत्मनिष्ठ पुरुषों में उनकी गिनती होती है। वैसे ही गांधीजी ने भी समाज की सेवा के लिए ब्रह्मचर्य का

आरम्भ किया। दक्षिण अफ्रीका में काम करते समय उनके मन में विचार आया कि सेवा कार्य कठिन है। सेवा के साथ कुटुम्ब की भी वृद्धि होती जाय, तो वह चल नहीं पायेगा। इसलिए उन्होंने निर्णय लिया कि समाज की सेवा के लिए ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। लेकिन बाद में उनका विचार उस बात की गहराई में पहुँचा। इस तरह गांधीजी की ब्रह्मचर्य-साधना का आरम्भ भी समाज-सेवा के लिए हुआ। वह भी अपने में एक विशाल ध्येय है। फिर उनका विचार विकसित होता गया। इस तरह किसी व्यापक और विशाल ध्येय के लिए इसका आरम्भ कर फिर आगे बढ़ा जा सकता है।

ब्रह्मचर्य की साधना अन्य हेतु से भी हो सकती है। कुछ लोग विज्ञान की शोध के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करते हें। विज्ञान के प्रति वे इतने एकनिष्ठ होते हैं कि उस हालत में गृहस्थाश्रम में पड़ना उन्हें उचित नहीं मालूम होता। वे विज्ञान में तन्मय हो जाते हैं और इसलिए उन्हें ब्रह्मचर्य सधता है। तन्मयता में एक बड़ी शक्ति है। किसी एक ध्येय में तन्मय हो जाओ, रात-दिन वही बात मन में रहे तो ब्रह्मचर्य सधता है। यद्यपि वह पूरा ब्रह्मचर्य नहीं है, कारण जब तक ब्रह्मनिष्ठा उत्पन्न नहीं होती, तब तक पूरा ब्रह्मचर्य नहीं कहा जा सकेगा।

ब्रह्मचर्य का अर्थ सिर्फ एक इन्द्रिय का निग्रह, इतना ही माना जाय, तो खतरा पैदा होगा। ब्रह्मचर्य का अर्थ है सभी इन्द्रियों पर काबू पाना। इसलिए ब्रह्मचर्य में दो बातें आती हैं—(१) ध्येय उत्तम होना चाहिए और वह विकसित होते-होते ब्रह्म की उपासना तक पहुँच जाना चाहिए, (२) सभी इन्द्रियों और मन को दबाते रहें। इन्द्रियों और मन को उचित दिशा में ले जाना है। अगर दबाने के ख्याल से काम चला तो मनुष्य का विकास नहीं होगा। वह तो निगेटिव बात है। इसलिए सभी इन्द्रियों का उचित उपयोग हो, इन्द्रियों का उचित नियमन हो, तो साधकों को बहुत लाभ होता है।

दूसरी एक बात, जीवन की छोटी-छोटी बातों में भी नियमन आवश्यक है। खाना-पीना, बोलना-चलना, उठना-बैठना, सोना आदि सभी विषयों में नियमन चाहिए। मनचाही चाल चलकर

इन्द्रिय निग्रह साध पायेंगे, यह आशा व्यर्थ है। घड़े में तनिक-सा छेद हो, तो भी वह पानी रखने योग्य नहीं रह जाता। इस प्रकार इसकी भी स्थिति है।

चार आश्रमों की योजना

इस दृष्टि से भारतीय धर्म-विचार में सुव्यवस्थित आयोजन किया गया है। मनुष्य-जीवन में चार आश्रम माने गये। पहला आश्रम ब्रह्मचर्याश्रम। इसमें गुरु-निष्ठा की बात थी। अध्ययन करना था; उसके साथ ब्रह्मचर्य का पालन आता था। तो मनुष्य के जीवन के लिए बुनियाद बन जाती थी। ब्रह्मचर्य बुनियादी निष्ठा है। आजकल बुनियादी शिक्षण की बात चलती है। उसका अर्थ है जो चीजें सारे जीवन में काम आती हैं, उनका शिक्षण, जैसे उद्योग आदि। इनकी बुनियाद पक्की हो। परन्तु ब्रह्मचर्य इन सबसे बड़ा गुण है। वह ऐसा गुण है, जिससे मनुष्य को नित्य मदद मिलती है। जीवन के सब प्रकार के खतरों में सहायता मिलती है। इसलिए तालीम में बच्चों में ब्रह्मचर्यनिष्ठा पैदा करने की व्यवस्था होनी चाहिए।

अध्ययन-काल समाप्त होने के बाद गृहस्थाश्रम आता है। उसमें पति-पत्नी की परस्पर निष्ठा और केवल संतान-हेतु मिलने की बात होती है। परन्तु आजकल दुनिया में यह नहीं चलता। परन्तु यदि लोगों को यह विचार जँच जाय तो चल सकता है। इस तरह गृहस्थाश्रम का भी आधार ब्रह्मचर्य ही है। संतान की वासना के साथ संतान की सेवा की बात आती है। और उसके साथ संतान की पूजा सबका धर्म बनता है। फिर अतिथि-सेवा भी आती है। ब्रह्मचर्य के लिए ये सब साधन आवश्यक हें। गृहस्थाश्रम भी थोड़े ही वर्षों के लिए होता है। उसके बाद वानप्रस्थाश्रम आता है, जिसमें समाजनिष्ठा की बात होती है। संसार से मुक्त होकर समाज की सेवा में लग जाना। अन्तिम आश्रम है संन्यासाश्रम, जिसमें ईश्वरनिष्ठा की बात है। इस आश्रम में परिव्रज्या की बात कही है।

लेकिन दु:ख की बात है कि आज वह सारी योजना, जो हिन्दुस्तान के धर्म की खास बातें थीं, नहीं रहीं। अब तो सभी धर्मों में थोड़ा-सा भक्तिमार्ग चलता है। यों वह अच्छा ही है। उसी के आधार पर हम आगे बढ़ेंगे। पर भक्तिमार्ग एक न्यूनतम कार्यक्रम है। आध्यात्मिक जीवन का

आधार तो है ब्रह्मचर्य। उसी बुनियाद पर बाकी सारा मकान खड़ा करना है। आज तो वह मकान गिर गया है। उसकी पुन: स्थापना करनी है। उसमें ब्रह्मचर्य बहुत बड़ा विचार है।

हिन्दुस्तान में बीच के जमाने में जो तेजोहानि हुई, उसका यह भी एक कारण है कि स्त्रियों को ब्रह्मचर्य का अधिकार नहीं रहा। स्त्री को गृहस्थाश्रमी बनना ही चाहिए, ऐसा माना गया। यह एक बहुत बड़ा दोष पैदा हो गया। अब इस जमाने में उसका संशोधन करना जरूरी है।

बहनों से बहुत आशा है

बुद्ध, शंकराचार्य, ईसा मसीह, ये सब ब्रह्मचारी थे। उन्हें अपनी बुद्धि के लिए ऐसा कार्य मिला था, जो बहुत ऊँचा था। उन्हें ऊँचे दर्जे के निर्माण-कार्य से समाधान होता था, इसलिए निर्माण की जो सर्वसाधारण प्रक्रिया मानी जाती है (संतानोत्पत्ति), उससे वे सहज ही बच गये। महान् कार्य करनेवालों को स्थूल निर्माण-कार्य में रस नहीं मालूम होगा।

मनुष्य में जो वीर्य-शक्ति होती है, वह उत्पादन के लिए है। अक्सर कहा जाता है कि जो लोग प्रतिभा का, निर्मिति का काम करते हैं, उनको स्थूल निर्मिति, संतान-निर्मिति की इच्छा कम रहती है। निर्माण-कार्य एक पवित्र कार्य है। जो ऊँची चीजों का निर्माण करना चाहेगा, वह नीची वस्तु को छोड़ देगा। इसीलिए मनुष्य की विषय-वासना जितनी बढ़ेगी, उतना वह नीचे गिरेगा। बुद्ध की प्रतिभा ज्योति के समान होती है। लेकिन अन्दर का जो तेल है, जिसके आधार से ज्योति जलती है, वह है वीर्य! इसलिए ब्रह्मचर्य से बुद्धि की प्रतिभा अधिक तेजस्वी होगी। जिनको अधिक बौद्धिक काम करना है, ऊँचा चिन्तन करना है, उनकी वीर्य-शक्ति का उपयोग साधारण निर्माण-कार्य में करना उचित नहीं है।

मेरी बहुत इच्छा है कि जवान लड़के-लड़कियाँ—खास करके लड़कियाँ ब्रह्मविद्या के दर्शन के लिए आगे आयें। ब्रह्मविद्या में स्त्री-पुरुष-भेद नहीं है, वह विद्या स्त्री-पुरुष भेदों को मिटाती है। फिर भी अभी मैं इस काम के लिए बहनों की ओर आशा लगाये बैठा हूँ। (इससे पूर्व मैं भाइयों के लिए प्रयत्न कर चुका हूँ।) अभी हमारे समाज के उत्थान के लिए ऐसी महिलाओं की बहुत जरूरत है, जिनका जीवन ही ब्रह्मविद्यामय बना हो।

आत्मज्ञानी उमाएँ प्रकट हों

वैदिक काल में स्त्रियाँ बड़ी ही ज्ञानवती होती थीं। एक प्रसंग है। याज्ञवल्क्य की सभा में चर्चा चल रही थी। गार्गी उठ खड़ी हुई और उसने याज्ञवल्क्य से कहा—"जैसे काशी या विदेह का क्षत्रिय वीर बाण मारता है वैसे ही मैं तुझे प्रश्नरूपी बाण मारती हूँ। तुम अपनी छाती सामने करो, मैं अपने प्रश्नों से ताड़न करूँगी।" उसने दो सवाल पूछे। याज्ञवल्क्य ने उन प्रश्नों के जवाब दिये। तब गार्गी ने हिम्मत के साथ पण्डितों से कहा कि "पण्डितों, अब याज्ञवल्क्य से चर्चा मत करो, इसे नमस्कार करो, क्योंकि इन सवालों से कठिन सवाल और हो नहीं सकते।" गार्गी किसी वीर के समान खड़ी होकर हिम्मत के साथ कहती है कि, 'मुझसे कठिन सवाल कौन पूछेगा!' वह वेद और उपनिषदों का जमाना था।

आज ज्ञान के क्षेत्र में स्त्रियों की क्या स्थिति है? मैं तो चाहता हूँ कि इस जमाने में ऐसी गार्गी हो, जिसके सवालों के जवाब देने में याज्ञवल्क्य भी हार मान लें। स्त्रियों को मेरा खास संदेश है कि ज्ञान के क्षेत्र में वे सर्वश्रेष्ठ बनें। अखण्ड ज्ञान की लालसा रखें। ज्ञान की तृष्णा कभी नष्ट न होने दें। ज्ञान की उपासना से ही आप दुनिया को जीत सकती हैं। सरस्वती की तेजस्विता आयेगी, तब बहनों में आक्रमणकारी शक्ति आयेगी। शंकराचार्य ने अपने शिष्यों को शारदा की उपासना करने को कहा था। शारदा यानी सरस्वती। स्त्री शारदा की प्रतिनिधि होनी चाहिए। ज्ञान की छोटी-सी पूँजी पर स्त्री तेजस्वी नहीं बन सकती और पुरुष-प्रधान समाज में स्वतंत्र होकर काम करने की शक्ति उसमें नहीं आ सकती। इसलिए स्त्रियों को ज्ञान में थोड़ा-सा भी पीछे नहीं रहना चाहिए। स्त्रियों को संस्कृति की रक्षा करनी है, प्रकृति से ऊपर उठना है, पुरुष को प्रकृति से ऊपर उठना है, इसलिए उन्हें पूरा ज्ञान होना चाहिए।

वेद में वर्णन आता है कि दुनिया को सरस्वती ने सत्यनिष्ठा की प्रेरणा दी है। प्रजा का धारण किया है। वह सारे समाज को सत्कार्य की प्रेरणा दे रही है। सर्वत्र सुमति जगाती है। सरस्वती को ही विद्या की देवी, वाग्देवता माना है। ऐसा सरस्वती का अधिकार जिन्हें है, वे चुपचाप खामोश

रहें, नीची नजरवाली रहें, सिर ढाँक लें, हाथ-पाँव में बेड़ियाँ डालें, भले ही वे सोने की हों, यह ठीक नहीं।

जैसे स्त्रियों को ज्ञानवान बनना चाहिए वैसे ही वाग्मी भी बनना चाहिए। अक्सर कहा जाता है कि स्त्रियाँ चुपचाप काम करें। लेकिन बोलने के मौके पर न बोलना चोरी है। भगवान् ने हमें एक शक्ति दी है—वाणी, उसका उचित उपयोग करना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि स्त्रियाँ वाग्मी बनें और शेर के समान गर्जना करें। उस गर्जना में नैतिक आचरण की और अन्दर की ब्रह्मनिष्ठा की ताकत हो और बाहर वक्तृत्व प्रकट हो। स्त्रियाँ दब गयीं, झुक गयीं, यह चलेगा नहीं। बल्कि यह होना चाहिए कि वे कहीं भी गयीं तो शेर के समान पराक्रम करती हैं, ताकत के साथ काम करती हैं। तो स्त्रियाँ ज्ञान-विज्ञान में अग्रसर हों, उनकी चिन्तन-शक्ति बढ़े और वाक्-शक्ति खुले।

उपनिषद् में कहा है कि अग्नि और इन्द्र ने तपस्या की लेकिन उनको ब्रह्म के दर्शन नहीं हुए। फिर उमा हेमवती के दर्शन उन्हें हुए और उस उमा ने इन्द्र और अग्नि को आत्मज्ञान दिया। इस तरह दुनिया को आत्मज्ञान देनेवाली उमाएँ प्रकट हों।

बहनों की सामूहिक साधना

प्राचीनकाल में एक हेमवती उमा हुई, परन्तु आगामी युग की प्रेरणा सामूहिकता की, सामूहिक भावना की है। आगामी युग स्त्रियों की ब्रह्मचर्यपूर्वक ब्रह्मविद्या की सामूहिक साधना का है। ब्रह्मविद्या की सामूहिक साधना पुरुषों ने की, प्राचीन काल में की, बीच के काल में की। लेकिन स्त्रियों ने नहीं की। इसलिए अब वह स्त्रियों को करनी है।

स्त्रियों की व्यक्तिगत साधना प्राचीन काल से चली आ रही है। मैं बहुत दफा नाम लेता हूँ, पाँच स्त्रियों के—कश्मीर की लल्ला, राजस्थान-गुजरात की मीरा, महाराष्ट्र की मुक्ता, कर्नाटक की महादेवी अक्का और तमिलनाडु की आंडाल। कश्मीर से लेकर तमिलनाडु तक पाँच स्त्रियों के नाम लेता हूँ। इन्होंने व्यक्तिगत साधना की। उनको समाज का विरोध करना पड़ा। समाज ने भी उनको काफी तकलीफ दी। लेकिन वह सारी उनकी अपनी-अपनी व्यक्तिगत तपस्या थी। किसी विषय में व्यक्तिगत तपस्या होती है, तो आरम्भ हो जाता है। यह साइन्स की पद्धति है।

साइन्स के जितने प्रयोग होते हैं वे प्रयोगशाला में होते हैं। व्यक्तिगत क्षेत्र में सफलता हासिल हुई तो उसका व्यापक आयोजन किया जाता है। प्राचीन काल में स्त्रियों ने व्यक्तिगत तौर पर शक्ति-निर्माण की कोशिश की, जिसके फलस्वरूप आज हमको प्रेरणा मिल रही है कि सामूहिक तौर पर स्त्रियाँ खड़ी हो जायँ। व्यक्तिगत क्षेत्र में स्त्रियों ने अपनी शक्ति प्रकट कर दी है, परन्तु अब स्त्रियों की आध्यात्मिक शक्ति सामूहिक रूप से प्रकट हो। सामूहिक तौर पर ब्रह्मचर्य का आदेश बहनों को भी मिलना चाहिए। इसी विचार से ब्रह्मविद्या-मन्दिर की स्थापना हुई है। यह भी युगकारी विचार है।

साधना सामूहिक तौर पर होनी चाहिए, यानी पन्द्रह-बीस मनुष्यों को इकट्ठा होकर साधना करनी चाहिए, इतना ही इसका अर्थ नहीं है। बल्कि उसका अर्थ यह है कि समूह-जीवन ही जीवन है। व्यक्ति का जीवन जितने अर्थ में समाज का हिस्सा हैं, उतने ही अर्थ में वह जीवन है, ऐसा माना जायेगा। समूह या समाज से अलग जीवन हो नहीं सकता। जो समाज से अलग है, उसमें जीवन नहीं है। जीवन तो सामाजिक ही है। हमारा शरीर भी एक समाज है, इसलिए उसमें जीवन है। उसमें नाक, कान, आँख आदि अवयवों को अलग-अलग किया जाय, तो उनमें जीवन नहीं होगा। समाज ही जीवन है और हम उसमें जितने अंश में हिस्सा लेते हैं, उतने अंश में हमें जीवन का अनुभव होता है।

जैसे एक अवयव दूसरे अवयव से अत्यन्त स्नेह करता है। पाँव में काँटा गया तो हाथ तुरन्त उधर दौड़ता है। ऐसा अन्योन्य प्रेम चाहिए। अवयवों का सम्बन्ध अत्यन्त स्वाभाविक है। ऐसा स्वाभाविक प्रेम सम्बन्ध सामूहिक साधना में महसूस होना चाहिए। हम सब मिलकर एक हैं।

बहनें विश्व-परिवार बनायें

हमारे आध्यात्मिक चिन्तन में यह एक दोष रह गया है। महापुरुषों का दोष नहीं, चिन्तन का दोष है। जिस प्रकार विज्ञान का विकास हो रहा है, उसमें नयी-नयी खोजें हो रही हैं और आगे भी होती रहेंगी, उसी प्रकार अध्यात्म में भी खोजें होती रहेंगी। ऐसा नहीं होगा तो आध्यात्मविद्या कुण्ठित हो जायेगी। तो आध्यात्मिक चिन्तन के इस दोष के कारण मनुष्य ने अर्थशास्त्र,

समाजशास्त्र में अपनी वृत्ति संकुचित बना ली है। मेरा घर, मेरी जाति, मेरा खेत, मेरी सम्पत्ति, मेरे घर का भला, मेरे राष्ट्र का भला—'मेरा' के आगे वह सोचता ही नहीं। इसी प्रकार केवल व्यक्ति के विचार का और संकुचितता का दोष परमार्थ में भी है। 'मेरा स्वार्थ', 'मेरा सुख' इसमें विचार-दोष है, खुद को अन्य लोगों से दूर करना। उसी तरह 'मेरी मुक्ति', 'मेरी साधना' आध्यात्मिक व्यक्तिवाद है, स्वार्थवाद है। प्रह्लाद का वाक्य प्रसिद्ध है। उसके सम्मुख नृसिंह की मूर्ति खड़ी हुई तब उसने कहा, **नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एक**:—इन दीन जनों को छोड़कर मैं अकेला ही मुक्त होना नहीं चाहता।

प्रह्लाद की यह बात आज के जमाने में हमें भी लागू होती है, क्योंकि अभी भी इसमें कोई सुधार नहीं हुआ है। 'मेरी' और 'मुक्ति' दोनों परस्पर विरुद्ध शब्द हैं। दोनों एक-दूसरे को काटते हैं। 'मेरी' शब्द 'मुक्ति' को काटता है, 'मुक्ति' शब्द 'मेरी' को काटता है। 'मैं का हटना', इसी का नाम मुक्ति है। जब तक 'मैं' है तब तक मुक्ति नहीं। 'मैं' का लोप मुक्ति का साधन है। स्वयं 'मैं' ज्ञानी बनूँ और अन्य सब अज्ञान में रहें, तो मैंने मेरी मुक्ति गँवायी। 'मेरा घर', 'मेरा खेत', 'मेरी साधना', 'मेरी मुक्ति' उन सबसे प्राप्त होने वाल समाधान एक ही कोटि का है। समाज का उत्थान करने की सामर्थ्य उसमें नहीं है। इसलिए पहले इस 'मैं' को 'हम' से काटें। 'हमारी साधना', 'हमारी मुक्ति' होगा। तभी व्यक्ति और समाज, दोनों का एकसाथ उत्थान होगा।

दुनिया में आज सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्र में आज की समाज-रचना कायम रखकर कुछ हलचलें चल रही हैं। लेकिन विज्ञान-युग में वे हलचलें निकम्मी साबित होंगी। कुछ हलचलें ऐसी भी चलती हैं, जैसी हम चला रहे हैं कि समाज-रचना की बुनियाद बदलें। 'मैं' की जगह 'हम' की स्थापना करें, परिवार बड़ा बनायें और विश्व को कुटुम्ब समझें। एक, आज की समाज-स्थिति कायम रखकर अपने-अपने गुट की सुख-प्राप्ति का प्रयास चलता है; और दूसरा, आज की समाज-रचना बदलकर विश्व-कुटम्ब बनाने का प्रयास चलता है। यह जो दूसरा काम है, उसकी बुनियाद है नया मन, परिवर्तित मन पुराना मन वह है जो पुराने ढंग से सोचता है। राग-द्वेष, मानापमान, ऊँच-नीच-भाव, अहंकार, वासना आदि कायम रखकर हम सोचते हैं, वैसी

आदत से चित्त को छुड़ाना चाहिए। चित्त को एक नया परिवेश प्राप्त होना चाहिए। इसी के लिए बहनों की सामूहिक साधना की, सामूहिक प्रयास की आज जरूरत है।

बचपन से मेरा विचार ब्रह्मविद्या की तरफ था। हमारे कार्य में उसको कमी महसूस होती थी। बापू के जाने के बाद ज्यादा महसूस होने लगी और मन में विश्वास हो गया कि इस भूमिका पर नहीं पहुँचते हैं, तो ये ऊपर-ऊपरवाली चीजें टिकेंगी नहीं। कम-से-कम हिन्दुस्तान में तो नहीं ही टिकेंगी, क्योंकि हिन्दुस्तान तत्त्वज्ञान की भूमि है। मुझे लगा कि ब्रह्मविद्या की पूर्ति किये बिना हमारा विचार अखण्ड प्रवाह में नहीं बहेगा। उसका जो प्रवाह बनना चाहिए, वह नहीं बनेगा। इसका निर्णय मेरे मन में हुआ और मैंने ब्रह्मविद्या-मन्दिर की स्थापना की। फिर यह भी मुझे लगा कि ऐसे आश्रमों की कुल व्यवस्था बहनों के हाथ में होनी चाहिए। यह भी एक प्यास मेरे मन में थी। स्त्रियों की साधना हमेशा गुप्त रही है। उसका प्रभाव किसी-न-किसी व्यक्ति पर जरूर हुआ है, परन्तु उस साधना के प्रकट होने की भी बहुत जरूरत है। विश्वशान्ति अकेले पुरुष नहीं कर सकते, यह इस जमाने की माँग है। ब्रह्मविद्या में स्त्री-पुरुष-भेद नहीं रहता, इसलिए भाई भी यहाँ रहेंगे। बुद्ध ने प्रथम स्त्री को प्रवेश नहीं दिया था, और दिया तो यह कहकर कि मैं एक खतरा उठा रहा हूँ। लेकिन वह पुराना जमाना था। मैं तो पुरुष के साथ स्त्री को स्थान न हो इसी में खतरा मानता हूँ। उसमें ब्रह्मविद्या अधूरी रहती है, ब्रह्म के टुकड़े होते हैं। तो मैं स्त्रियों के हाथ में संचालन देकर उस ब्रह्म के टुकड़े होने नहीं दे रहा हूँ। जमाने की माँग है, इसलिए संचालन स्त्रियों के हाथ में रहेगा, तो सुरक्षित रहेगा। आज तक ब्रह्मविद्या का शास्त्र एकांगी रहा है। उसमें संशोधन हो और संशोधित ब्रह्मविद्या दुनिया के सामने आये और वह काम बहनों के द्वारा हो। भारतीय ब्रह्मविद्या का स्वरूप पुरस्कृत होने के लिए काफी गुंजाइश है। स्त्रियाँ यह काम समूहरूपेण करेंगी तभी चित्र बदलेगा। समूह-साधना के ख्याल से ब्रह्मविद्या-मन्दिर की शुरुआत हुई है।

•

(३) स्त्री-शक्ति और समाज-परिवर्तन

जब कभी मेरे सामने प्रश्न आया कि आखिर समाज-क्रान्ति कौन करेगा, तब मुझे यही लगा कि पुरुषों से दो कदम आगे बढ़कर स्त्रियाँ ही यह काम कर सकती हैं। इन दिनों लोग कहते हैं कि बहनों को आगे आना चाहिए। मैं भी यही कहता हूँ। लेकिन दूसरे अर्थ में कहता हूँ। बहनें फौज में, दफ्तरों में, सरकार में जायें, इससे मेरा समाधान नहीं होगा। मैं चाहता हूँ कि राजनीति, सेना और धर्म (सम्प्रदाय)—इन तीनों से मुक्त होकर केवल ब्रह्मविद्या का आधार लेकर बहनों को आगे आना चाहिए।

राजनीति से मुक्त रहें

इन दिनों कुल दुनिया के मसले ज्यादा टेढ़े होते जा रहे हैं। लगभग दो सौ साल से जो प्रयत्न हुए उससे उलटा कदम उठाया जा रहा है। लोकतंत्र की उलटी दिशा में एकतंत्र की तरफ दुनिया जा रही है। क्योंकि यह सारा पुरुष ही कर रहे हैं और बहुत सारे पुरुष ऐसे हैं, जो पुराने इतिहास में बहे जा रहे हैं, पुराने मन से सोचते हैं। इसलिए गुत्थी कायम रहती है, बल्कि सुलझने के बजाय उलझती जाती है, इसलिए इसमें कोई ताजगी लानी होगी। नया तरीका लाना होगा, जो नयी शक्ति लायेगा।

सर्वोदय ही ऐसी शक्ति है, जो इन गुत्थियों को सुलझा सकती है। लेकिन सर्वोदय की शक्ति को जगाने के लिए ऐसी आत्मा की जरूरत है, जिसने अभी तक सियासत में पड़कर अपना दिमाग खराब न किया हो। यह जब मैं सोचता हूँ तब मुझे बहनों का स्मरण होता है। उन्होंने अब तक सियासत में पड़कर अपना दिमाग खराब नहीं किया है। उनका दिमाग ताजा है।

इस वक्त हिन्दुस्तान में जिस ढंग से सार्वजनिक चिन्तन चलता है, वह ढंग बदले बिना हिन्दुस्तान को अपने स्वरूप का दर्शन नहीं होगा। आज राजनीति को सर्वस्व समझकर हिन्दुस्तान के अखबार और शिक्षित लोग सोचा करते हैं, उससे हिन्दुस्तान का उत्थान नहीं होगा, बल्कि इन दिनों लोकतंत्र का अर्थ ही अन्योन्य मत्सर हो गया है। इसलिए अब बहनों को आगे आना चाहिए

और पुरुषों से कहना चाहिए कि 'हम पक्षों के झगड़ों में नहीं पड़ेंगी। तुम लोग बच्चे हो और हम हैं माता, हम किसी पक्ष में नहीं रहेंगी, हम दिल जोड़ने का काम करेंगी।' राजनीति तोड़ना जानती है। स्त्रियों को तो जोड़ने का काम करना है। स्वयं तो पक्ष से परे रहना ही चाहिए, बल्कि पुरुषों से भी कहना चाहिए कि वे भी पक्षों से अलग रहें। स्त्री के लिए पक्षातीत रहना ही शोभादायक है, क्योंकि वह मातृ-शक्ति है। दो बेटे लड़ते हैं तो माँ किसी एक का पक्ष नहीं लेती, दोनों को सँभालती है। एक ओर तीस और दूसरी ओर सत्तर, ऐसी कल्पना मातृत्व के खिलाफ है। मातृ-शक्ति में ऐसे टुकड़े नहीं होते, क्योंकि माता तो सभी का हित देखती है।

गांधीजी की बहनों पर बहुत श्रद्धा थी। गांधीजी के कारण हजारों बहनों ने बड़े-बड़े काम किये। उनका दिल गांधीजी के पास खुलता था। गांधीजी ने महिलाओं से बहुत आशा रखी थी। उनकी उस आशा का स्पर्श बहनों को हो जाय तो वे खूब काम कर सकती हैं। बापू ने अपने अन्तिम वसीयतनामे में कांग्रेस को लोकसेवक-संघ बनाने का आदेश दिया था। लेकिन यह हो नहीं सकता था, क्योंकि कांग्रेस एक सियासी पार्टी बन गयी थी। तो अब स्त्रियाँ आगे आकर कहें कि पुरुषों ने वह सलाह नहीं मानी, लेकिन हम मानेंगी और लोकसेवक-संघ बनायेंगी, जिसका नैतिक असर सारे समाज पर पड़ेगा। किसी भी पार्टी में न फँसकर स्वतंत्र बुद्धि से समाज का नेतृत्व करने के लिए स्त्रियाँ आगे आयेंगी तब आज की गुत्थियाँ सुलझेंगी और दुनिया को बहुत मदद मिलेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

परिवार का विस्तार समाज तक

जो अहिंसा पहले व्यक्तिगत क्षेत्र में ही मान्य थी, उसे सामाजिक क्षेत्र में लाकर गांधीजी ने स्त्रियों के लिए सामाजिक क्षेत्र खोल दिया है। स्त्रियों को पूरा सामाजिक क्षेत्र मिल गया है। अब उन्हें अपने परिवार का विस्तार समाज तक करना है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने तो समूची पृथ्वी को ही कुठुम्ब कह दिया है—**वसुधैव कुटुम्बकम्**—यह पृथ्वी हमारा छोटा कुटुम्ब है। अब बहनों को स्व से आगे बढ़ना होगा, स्वार्थ को केवल परिवार तक नहीं, गाँव तक बढ़ाना होगा। माताओं को प्रेम का दायरा बढ़ाना होगा। पूरे गाँव को परिवार मानना होगा।

गृहस्थाश्रम में मनुष्य को प्रेम की तालीम मिलती है, प्रेम का अभ्यास होता है। परिवार में प्रेम का प्रयोग किया, अभ्यास किया, उसमें सफलता प्राप्त की, अब उस प्रेम का विस्तार गाँव तक, समाज तक करना चाहिए। यदि प्रेम परिवार में ही सीमित हो जायेगा तो उस प्रेम का स्वरूप बदल जायेगा, वह कामवासना में परिवर्तित हो जायेगा। सब पापों का मूल कामवासना में है। परिवार में झगड़े शुरू हो जायेंगे। जैसे पानी बहता रहता है तो स्वच्छ रहता है, परन्तु छोटे-से गड्ढे में इकट्ठा होकर सीमित हो जाता है, तो उसमें से दुर्गन्ध आती है, वैसे ही प्रेम का है। उसको बहते रहना चाहिए। पहले 'मैं और मेरा' फिर 'हम और हमारे', और फिर 'गाँव और गाँव के'; उसके बाद तो सब 'तेरा ही तेरा' अर्थात् 'परमेश्वर' का है। यही है ब्रह्मविद्या का क्रमश: शिक्षण और यही है ब्रह्मविद्या का सार।

भूदान-यज्ञ-आरोहण में स्त्रियों ने जो हिस्सा लिया है, वह मुझे तो अद्भुत ही मालूम होता है। बहनें थोड़ी थीं, पर उन्होंने बहुत काम किया। अपना अध्ययन, नौकरी, घर-बार आदि सबकुछ छोड़कर काम में लगीं। भूदान का इतिहास बताता है कि किस तरह कोरापुट के जंगलों में स्त्रियों ने अकेले घूमकर अलख जगाया। परन्तु इन सबका पता ही देश को नहीं है। इस आरोहण-कार्य में बहनों ने जो काम किया, उसका अपना स्वतंत्र इतिहास रहेगा। मीराबाई का एक भजन है— **मातु छोड़ि पिता छोड्या छोड्या सगासोई**। ठीक इसी तरह से बहनों ने अपना सर्वस्व छोड़कर भूदान-यज्ञ में काम किया। मैं कहता हूँ कि आज जो गलत मूल्य रूढ़ हैं, उन्हें बहनें ही बदल सकती हैं। इसलिए बहनों को आध्यात्मिक अधिकारों के बारे में अच्छी तरह सोचना चाहिए और बगावत करके खड़े होना चाहिए। मीराबाई की बगावत में जो ताकत थी, वह ब्रह्मविद्या की ताकत थी। स्त्रियों को इसी ब्रह्मविद्या की अत्यन्त आवश्यकता है। उसके साथ वे समाज-क्रान्ति के काम में लग जायँ।

सारांश, राजनीति से मुक्त होकर स्त्रियाँ अगर राष्ट्र-कार्य में लग जायेंगी, तो निश्चय ही राष्ट्र प्रगति करेगा। आज पुरुषों को कुछ भी सूझ नहीं रहा है। उनको बुद्धि-भ्रम हो गया है। 'जैसे को तैसा' करते-करते आज वे 'एटम' और 'हाइड्रोजन' तक पहुँच गए हैं। उनकी बुद्धि अब आगे नहीं

चलती। पुरुषों की लज्जा का वस्त्र-हरण शुरू हो गया है। उनकी लाज सँवारने के लिए स्त्री-शक्ति को आगे आना चाहिए।

सेना से मुक्त रहें

आज मानव समाज की जो रचना है, वह सर्वनाश की है, और वह पुरुषों ने अपनी बुद्धि से बनायी है। पुरुष आज तक भय पर ही सारी रचना करते आये हैं, अभय पर नहीं। वे सारी दुनिया को आग लगाना जानते हैं। इसी कारण इस बीसवीं सदी में—पचास सालों में दो बड़े-बड़े विश्वयुद्ध हो चुके हैं और तीसरे का भय सिर पर मँडरा रहा है। इससे दुनिया बिल्कुल हैरान, बेजार हो गयी है।

स्त्री-पुरुष समानता के नाम पर ये लोग स्त्रियों की पलटनें भी खड़ी करना चाहते हैं। इसके बजाय कि स्त्रियों के हाथ में वह अंकुश आये, जिससे वे पुरुषों को ऐसे कामों से परावृत्त कर सकें और अपने मातृत्व की शक्ति जीवन में ला सकें; उन्हें रंगरूट-भर्ती में भी स्थान दिया जाता है और हिंसक कामों में उनसे मदद की अपेक्षा रखी जाती है। यह सब निर्भयता के ख्याल से चलता है और स्त्रियाँ भी समझती हैं कि शायद हमारे हाथ में बन्दूक आ जाय तो हम निर्भय बनेंगी। लेकिन निर्भयता का बन्दूक के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। बन्दूक के बल से अगर निर्भयता आती, तो आज अमेरिका और रूस के लोग निर्भय बन जाते। उनके पास तो बहुत शस्त्रास्त्र हैं, फिर भी उनके हृदय में धड़कन है। मेरा ख्याल है कि उनका रक्तचाप भी नार्मल नहीं रहता होगा। दोनों एक-दूसरे से डरते रहते हैं। शस्त्रास्त्र ने उन्हें निर्भय नहीं बनाया।

करुणा का साम्राज्य स्थापित करें

आज तक स्त्रियों को सार्वजनिक जीवन में खींचने की जो भी कोशिश हुई है, वह पुरुषों के ढंग से काम करने की हुई है, स्त्रियों के ढंग से नहीं। उनसे कहा गया कि चुनावों में आओ, सेना में आओ। मैं सोचता हूँ कि पुरुषों के साथ स्त्रियाँ भी बन्दूक तानने का काम करें, इसमें पुरुषों की बराबरी करें तथा इस तरह खुद को समाजकार्य में अग्रसर मानें तो स्त्रियाँ कभी भी अग्रसर नहीं हो सकतीं। इससे वे पुच्छसर ही होंगी, क्योंकि हिंसा के मार्ग में स्त्रियों के लिए पचासों बाधाएँ

उपस्थित होती हैं, जो पुरुषों के लिए नहीं होती। जब देश की रक्षा सैन्य-शक्ति से होती है तब तक पुरुषों का दर्जा ऊँचा ही रहनेवाला है। क्योंकि स्त्रियों की शरीर-रचना ऐसी होती है कि उन्हें गर्भधारणा करनी पड़ती है, इसलिए स्वभावत: हिंसा उनके लिए कठिन है। एक झाँसी की रानी निकली थी, परन्तु वैसी ज्यादा नहीं निकल सकतीं। लेकिन अहिंसा में स्त्रियाँ पुरुषों की बराबरी कर सकती हैं, बल्कि आगे भी जा सकती हैं। इसलिए यह जरूरी है कि स्त्रियाँ आगे आयें और अपने ढंग से आगे आयें। स्त्रियों का यह ढंग है करुणा का ढंग।

एकबार किसी अमेरिकन ने मुझे पूछा था कि आप आखिर किसका राज्य चाहते हैं? तब मैंने उससे कहा था कि मुझे तो "किंगडम ऑफ काइंडनेस'—करुणा का साम्राज्य चाहिए। आज करुणा सत्ता की दासी हे, सत्ता के अधीन है, मैं उसे साम्राज्ञीपद पर बिठाना चाहता हूँ। बहनें अगर अपने दैवी गुणों के साथ, संयमशीलता के साथ, अपनी मातृ-शक्ति के साथ सामने आती हैं, तो करुणा का साम्राज्य स्थापित कर सकती हैं। अब समाज की बागडोर स्त्रियों को अपने हाथ में लेनी चाहिए।

शान्ति-सेना का काम करें

इसलिए हम शान्ति-सेना का बहुत बड़ा काम बहनों को सौंपना चाहते हैं। शान्ति-सेना में ऐसे सेवक होंगे, जो मानेंगे कि हमें अखिल मानव की सेवा करनी है। हम सब मिलकर भारत का दु:ख निवारण करेंगे। उसमें जाति, धर्म, पंथ, भाषा, पक्ष आदि भेद रहेंगे नहीं। शान्ति-सेना का सैनिक नित्य घर-घर जाकर जनसेवा करेगा—साहित्य-प्रचार, सर्वोदय-पात्र का प्रचार करेगा और घर-घर से परिचय कर लेगा। और अशान्ति के समय शान्ति स्थापित करने का काम करेगा। जहाँ सुना कि झगड़ा हो रहा है, दंगा हो रहा है, वहाँ फौरन पहुँच जायेगा और बीच में जाकर कहेगा कि हम तुम्हें झगड़ने नहीं देंगे। यह सब बहनों को करना है। दंगे-झगड़े शान्त करने में बहनें घायल भी हो जायँ, तो तैयार रहना है। यदि एक भी बहन मार सहन कर लेती है तो दंगा बन्द हो जायेगा। तो शान्ति-सेना की बहनों को दो प्रकार का कार्य करना होगा—शान्ति के समय सेवा-कार्य और विशेष मौके पर अशान्ति-शमन यानी शान्ति स्थापित करने का कार्य।

मानव-समाज बहनों के कारण टिका हुआ हे। हिन्दुस्तान में बहनों ने आज तक पीछे रहकर जोर लगाया कि समाज में सद्भावनाएँ टिकें। भारत में जो सद्भावनाएँ टिकी हैं, वे बहनों के कारण टिकी हैं। पुरुष बाहर काम करते हैं, परन्तु उन पर भाई, पिता, पति, पुत्र आदि के नाते अंकुश रखना, धर्मपथ को वे छोड़कर न जायें, इसके लिए उन पर नैतिक वजन डालना, यह सारा काम चुपचाप बहनों ने किया है। यह धर्म-रक्षा का बहुत बड़ा काम है, इसमें कोई शक नहीं। लोकमान्य तिलक अक्सर कहा करते थे कि हिन्दुस्तान में अगर किसी ने धर्म को बना रखा है, तो वह स्त्रियों ने ही। लेकिन यह अब तक परिवार तक ही सीमित रहा है। अब बहनों को थोड़ा बाहर निकलकर भी काम करना पड़ेगा। इसलिए शान्ति-रक्षा के काम की अपेक्षा बहनों से की जाती है।

विश्व-शान्ति के लिए सर्वोदय-पात्र

विश्व-शान्ति के लिए, शान्ति-सैनिक के पीछे लोकसम्मति का बल होना चाहिए, अहिंसा को विकसित करने का अवसर स्त्रियों को मिलना चाहिए, इस पर मैं सोच रहा था, तब सर्वोदय-पात्र का विचार मुझे सूझा। स्त्रियों के मस्तिष्क में राजनीति न होने के कारण उनसे समाज में कभी फूट नहीं पड़ सकती। उनमें धर्म-बुद्धि बनी हुई है। इसलिए सर्वोदय-पात्र के काम में उनकी शक्ति का योगदान मिला तो बहुत बड़ी क्रान्ति हो सकती है।

सर्वोदय-पात्र के द्वारा स्त्रियों को आगे आने का अच्छा अवसर मिलेगा। मानव के शरीर में तमोगुण होने के कारण बीच-बीच में उसे प्रेरणा देना जरूरी हो जाता है। आज तमोगुण से पत्थर बनी हुई कितनी ही अहिल्याएँ समाज में पड़ी हैं। उन्हें एकबार प्रेरणा दी जाय तो तत्काल उठकर काम में जुट जायेंगी। सर्वोदय-पात्र के काम से बहनों को प्रेरणा मिलेगी।

भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि हम खाने से पहले समाज को कुछ देते हैं। हम जो खाते हैं, उसे सबकी सम्मति मिले, इसके लिए खाने से पहले थोड़ा-सा अंश समाज के लिए अलग रखते हैं। यह खाने का प्रायश्चित है। खाने से पाप होता है। इसलिए खाने से पहले कुछ प्रतीक के तौर पर थोड़ा समाज के लिए अलग रखना चाहिए। मैं इसे नयी क्रान्ति का स्वरूप देना

चाहता हूँ। सारे भारत की शान्ति और सेवा के लिए पुलिस की जरूरत न हो, सेना की जरूरत न हो, शान्ति-सैनिक ही आन्तरिक शान्ति रखें और उनके पीछे, उस शान्ति के विचार के पीछे सम्मति के तौर पर रोज एक मुट्ठी अनाज सर्वोदय-पात्र में डाला जाय। सारे समाज में शान्ति रहे, किसी का किसी से विरोध न हो, इसके लिए सम्मति के प्रतीक के तौर पर सर्वोदय-पात्र घर पर रखें।

प्रेम और शान्ति का नाम लेकर एक मुट्ठी अनाज देने की प्रथा प्रत्येक धर्म में है। यह नयी बात नहीं है। सभी धर्मों का यह संदेश है कि पहले समाज के लिए देना चाहिए, फिर घर के लोगों के लिए और उसके बाद अपने लिए लेना चाहिए। यह क्रम केवल धर्म की किताबों में नहीं, मनुष्य के हृदय में भी पड़ा है। सर्वोदय-पात्र का काम धर्म का ही एक नया प्रकार है।

एक मुट्ठी अनाज हर घर से मिलना चाहिए और वह भी घर में सबसे छोटा बच्चा होगा उसकी मुट्ठी से। यह क्यों? इसलिए कि इससे सर्वोदय को मदद और सम्मति तो मिलेगी ही, परन्तु बड़ी बात यह होगी बच्चों को शिक्षण मिलेगा। रोज भोजन से पहले माँ बच्चे को पूछेगी कि क्या तूने सर्वोदय के मटके में अनाज डाला? बच्चा अगर भूल गया होगा, तो कहेगी कि जा पहले डालकर आ। तो बच्चे को संस्कार मिलेंगे। इससे बड़ी भारी धर्म-संस्थापना होगी, ऐसी मेरी भावना है। इससे बहुत बड़ी आध्यात्मिक और भौतिक शक्ति पैदा होगी।

जब हम कहते हैं कि माताएँ प्रतिदिन बगैर भूले बच्चों से सर्वोदय-पात्र में एक मुट्ठी अनाज डलवायें, तो कहा जाता है कि यह रोज डलवाने की बात बहुत कठिन है। प्रतिदिन बिना भूले यह काम कौन करेगा? इसका उत्तर यह है कि हिन्दुस्तान की स्त्रियाँ यह काम कर सकेंगी। स्त्रियों में यह शक्ति है कि वे जो काम हाथ में लेंगी, वह सतत करेंगी और जिसे धर्म-विचार समझकर अपनायेंगी, उसे कभी भी नहीं छोड़ेंगी। यदि वे कहें कि वे यह काम रोज करेंगी, तो करेंगी ही। मुझे विश्वास है कि वे सतत यह धर्मकार्य करेंगी। उन्हीं के भरोसे मैंने यह सर्वोदय-पात्र की बात रखी है और आशा प्रकट की है कि प्रत्येक घर में सर्वोदय-पात्र रखा जाना चाहिए।

शील-रक्षा का कार्य

यदि अपने नैतिक बल का उपयोग कर समाज में शान्ति स्थापित करने की हिम्मत स्त्रियों को करनी है, तो उन्हें शान्ति-रक्षा के लिए शील-रक्षा का काम भी करना होगा। एक तरफ तो हम देख गये कि हिन्दुस्तान में कितना मातृ-गौरव गाया गया है। और दूसरी तरफ देखते हैं कि स्त्री की इतनी शक्ति होने पर भी स्त्री की तरफ लोग देखते हैं कामिनी के तौर पर यानी काम-साधना के एक विषय के तौर पर। यह मातृ-शक्ति का सबसे बड़ा अपमान है।

आज शहरों की दशा बड़ी खतरनाक है। बड़े-बड़े शहरों में स्त्रियाँ कहीं अकेली जाती हैं तो पुरुषों के आक्रमण का डर बना रहता है। अंग्रेजी में एक शब्द है, ईव टीजिंग—यानी रास्ते में स्त्रियों को सताना। शाम को बहनें रास्ते जाती हैं, पढ़ी-लिखी लड़कियाँ जाती हैं तब लड़के उनके पीछे लगते हैं, उन्हें सताते हैं। यह क्या बात है? यह तो शील-भ्रंश हो रहा है, जिससे गृहस्थाश्रम की प्रतिष्ठा ही गिर रही है। इसका विरोध करने के लिए बहनों को सामने आना चाहिए। माताओं को समझना चाहिए कि अगर देश का आधार शील पर नहीं रहा, तो देश टिक नहीं सकता। शिवाजी महाराज की विख्यात कहानी है। उनके एक सरदार ने लड़ाई जीती और एक यवन-स्त्री को वे शिवाजी महाराज के पास लाये। शिवाजी महाराज ने उनकी तरफ देखकर कहा, 'माँ, अगर मेरी माता तुम्हारे जैसी सुन्दर होती तो मैं भी सुन्दर बनता।' और उन्होंने उसे आदरपूर्वक विदा किया। ऐसी संस्कृति जिस देश में चली, उस देश में इतना चारित्र्य-भ्रंश हो और सब लोग देखते रहें, यह कैसे हो सकता है! उसका विरोध अगर बहनें नहीं करेंगी, तो फिर परमेश्वर ही भारत को बचायें, यही कहने की नौबत आयेगी। इसके लिए कामवासना प्रेरक जो-जो चीजें हैं, उन सब पर प्रहार करना होगा।

उन चीजों में पहली चीज है सिनेमा के पोस्टर्स! इसके खिलाफ हमने इन्दौर में आन्दोलन शुरू किया था। इन्दौर में मैंने दीवारों पर इतने भद्दे चित्र देखे कि मैं उसे सहन नहीं कर सका। माता-पिता इन चित्रों को कैसे सहन करते हैं, न मालूम! मेरी नौ साल की पदयात्रा में शहरों में रहने का मौका मुझे मिला नहीं था। इन्दौर में एक माह रहा। वहाँ ये जो सिनेमा की जाहिरातें देखीं,

उससे मेरा हृदय व्यथित, व्याकुल हो उठा। तभी से मेरे ध्यान में आया कि शील-रक्षा की मुहिम होनी चाहिए और स्त्रियों को शान्ति-रक्षा के साथ शील-रक्षा का भी काम करना चाहिए। उसके बिना संस्कृति नहीं टिकेगी। जिस देश की संस्कृति में स्त्रियों के लिए अत्यन्त आदर था, वहाँ ऐसे गन्दे चित्र खुलेआम दिखाये जायें और लड़कों के दिमाग इतने विषय-वासनाओं से भरे हुए हों कि कन्याओं के पीछे लगने में ही उन्हें पुरुषार्थ मालूम पड़े, यह बहुत शोचनीय और लज्जाजनक बात है। जरा सोचना चाहिए कि हम कहाँ जा रहे हैं!

इन्दौर में मैंने जो हालत देखी, उससे मुझे लगा कि वे गंदे पोस्टर्स दीवालों पर से हटने ही चाहिए। यदि कानून से नहीं हटते हैं, तो धर्म से हटाना होगा। धर्म कानून से ऊँचा होता है, अधिक होता है। जो कानून धर्म की रक्षा न करता हो उस कानून को ठीक करने के लिए कानून-भंग करना आवश्यक हो जाता है। इसको मैं सत्याग्रह नाम नहीं देना चाहता। मेरे मकान के सामने सूअर की लाश पड़ी हो और उसमें से बदबू आती हो, उसे न म्युनिसिपालिटी हटाती हो न सूअर का मालिक हटाता हो, ऐसी परिस्थिति में मैं ही उसे हटा दूँ तो क्या वह सत्याग्रह कहा जायेगा?

मैं सिनेमा-उद्योग के खिलाफ नहीं हूँ। लेकिन अच्छे-अच्छे चित्रपट ही प्रकाशित हों, यह मैं जरूर चाहूँगा। मैं विज्ञान का समर्थक हूँ, और विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय चाहता हूँ। इसलिए रात देर तक सिनेमा न चले, आदि-आदि चाहूँगा, परन्तु वहाँ आन्दोलन का सवाल नहीं आता है, क्योंकि वहाँ तो लोग अपनी इच्छा से खुद पैसा खर्च करके जाते हैं, वह देखना उनके लिए लाजमी नहीं है। परन्तु दीवार के अशोभनीय पोस्टर्स देखना लाजमी हो जाता है। एक पोस्टर्स देखा, जिस पर लिखा था, हनीमून! अब बच्चा उसको देखकर माँ से पूछेगा, माँ, हनीमून यानी क्या? तो यह लाजमी हो जाता है। यह हमारे बच्चों को मुफ्त और लाजमी तौर पर कामवासना को तालीम मिल रही है। इसे हम बरदाश्त नहीं कर सकते हैं। बच्चों को मुफ्त में और लाजमी तौर पर इन चीजों का शिकार होना पड़ता है। जिन्हें ये पोस्टर्स पसन्द हों वे भले ही अपने रंगमहलों में लगायें; परन्तु नागरिकों की आँखों पर आक्रमण करने का किसी को अधिकार नहीं है।

इसलिए इन गन्दे चित्रों के खिलाफ आवाज उठाने का काम बहनों को ही करना चाहिए। कामवासना-प्रेरक सभी चीजों पर प्रहार करना होगा। समाज की जड़ें आज उखाड़ी जा रही हैं। जहाँ सारे तरुणों का चित्त केवल विषय-वासना में लगा हुआ होगा, वहाँ समाज की बुनियाद ही उखाड़ी जायेगी। इसलिए पावित्र्य-रक्षा को जिम्मेवारी भी बहनों पर है! यह काम नहीं होगा तो समाज बचेगा नहीं, उत्तरोत्तर गढ़े में जायेगा। फिर हम कितनी भी कोशिश करें शान्ति रहेगी नहीं।

साम्प्रदायिक भावना से मुक्त रहें

तीसरी बात मैंने कही धर्म (पंथ) से मुक्त रहने की। राजनीति और सेना से मुक्त होने की बात समझना सरल है, परन्तु मैं उसके साथ धर्म को भी जोड़ रहा हूँ। धर्म शब्द मैं यहाँ विविध सम्प्रदाय के अर्थ में इस्तेमाल कर रहा हूँ। मैं हिन्दू हूँ, तुम मुस्लिम हो। हिन्दू में भी मैं ब्राह्मण, तुम शूद्र हो, इस प्रकार धर्म के नाम पर भी मानव-मानव अलग पड़ जाते हैं। ईश्वर यह कभी नहीं चाहेगा कि हम अलग हों। इसलिए हमें ऐसा धर्म नहीं चाहिए, जो मानव-मानव के बीच दीवार बनकर आता है। हमें अध्यात्म चाहिए, जो सबको जोड़ता है।

ये सारे विविध सम्प्रदाय एक जमाने में लोगों को इकट्ठा करते थे। जो समाज-व्यक्ति में बिखरा था, उसका एक समाज बनाने में इन सम्प्रदायों ने एक जमाने में मदद की। आज जब विज्ञान के जमाने में सारी दुनिया नजदीक आ रही है और इसलिए हम सारी दुनिया को एक करने की बात करते हें तब ये सारे पंथ तोड़नेवाले साबित हुए हैं। इसलिए इन पंथों को आज खतम करना है और उनकी जगह अध्यात्म को लाना है।

अध्यात्म सम्प्रदाय से अलग चीज है। सम्प्रदाय हर जमाने में, हर कौम के लिए, हर समय नहीं होता, पर अध्यात्म होता है। जैसे प्यार करना, सच बोलना, रहम रखना अध्यात्म है, वैसे है भगवान् की भक्ति करना अध्यात्म है। परन्तु प्रार्थना के लिए कैसे बैठना, मुँह किधर करना, यह सम्प्रदाय है। कुछ लोग धर्म के लिए रात को फाका करते हैं, कुछ लोग दिन में करते हैं, कोई सूरज डूबने से पहले खा लेते हैं। इसका नाम है सम्प्रदाय। लेकिन अपने पर जब्त रखने के लिए फाका करना, यह है अध्यात्म। जियारत (तीर्थयात्रा) के लिए मक्का जाना, अजमेर जाना, कशी या

अमरनाथ जाना, यह सब सम्प्रदाय है, लेकिन कभी-कभी घर छोड़कर सेवा के लिए बाहर निकलना, यह है अध्यात्म। अध्यात्म और सम्प्रदाय में यह फरक है। हमें दिल्ली जाना है। जाने के लिए पाँच-छह रास्ते हैं। किसी भी रास्ते से जायें, मुकाम पर तो पहुँच ही जायेंगें। सम्प्रदाय के तरीकों में फरक होता है। इसलिए सम्प्रदायवाले कभी-कभी नाहक झगड़ते रहते हैं। वे यह नहीं समझते कि सम्प्रदाय बदलता है, न बदलनेवाली चीज अध्यात्म है। अब विज्ञान के जमाने में राजनीति और पांथिक धर्म (सम्प्रदाय) दोनों छोड़ने होंगे और आध्यात्किता को स्वीकार करना होगा।

स्त्रियों पर धर्म का प्रभुत्व अधिक होता है। उनमें एक प्रकार की भक्ति होती है और इसलिए बहुत सारी बातें वे बिना समझे मान्य कर लेती हैं। इस चीज को मैं हटाना चाहता हूँ। और केवल आध्यात्मिक शक्ति ही विकसित हो, ऐसा चाहता हूँ। आज धर्म में ऐसी कितनी बातें हैं, जो मनुष्य को पकड़कर बाँध लेती हैं। उसमें से मुक्त होना चाहिए। विज्ञान दुनिया को नजदीक ला रहा है, दूसरे ग्रहों से सम्बन्ध जोड़ रहा है। इस हालत में पुराने खयालात, पुरानी कल्पनाएँ टिक नहीं सकतीं।

इस प्रकार स्त्रियों की शक्ति समाज-परिवर्तन के काम में लगनी चाहिए। उसके लिए समाज में नये मूल्य दाखिल करने होंगे। समाज की शील-रक्षा, शान्ति-रक्षा, सभ्यता तथा संस्कृति की रक्षा बहनों द्वारा ही हो पायेगी। बाकी जो मामूली सेवा के काम हैं, वे तो दुनिया में अखण्ड चलते रहेंगे। स्त्रियों की शक्ति क्रान्ति के काम में लगनी चाहिए। अहिंसक समाज-रचना की स्थापना में बहनों का बहुत बड़ा सहयोग मिल सकता है। .

(४) संयम से परिवार-नियोजन

मातृत्व की विडम्बना

आजकल अक्सर कहा जाता है कि समाज में संतान की आवश्यकता कम है इसलिए परिवार-नियोजन करो। यह बात सही है। बहनों को इस बारे में सोचना चाहिए। वे एक बड़ा काम करती हैं संतति-निर्मिति का, जिसमें पुरुषों से चौगुना क्लेश स्त्रियों को होता है। इसमें कुछ भी आनन्द नहीं है, ऐसी बात नहीं, फिर भी क्लेश ही काफी भोगने पड़ते हैं। गर्भधारण से लेकर क्लेश ही है, जिसकी चिन्ता बहनों को ही करनी पड़ती है।

अब बहनों को सोचना चाहिए कि अगर समाज को संतान की जरूरत नहीं है तो वे ऐसा कार्य क्यों उठायें? वे अपने त्याग को दूसरी दिशा में ले जायें। बहनों का जीवन त्यागमय होता है, भले ही वे संसारग्रस्त हों। गांधीजी ने तो बहनों के लिए ‘त्याग-मूर्ति' शब्द का इस्तेमाल किया था, जो मुझे जँच गया। समाज को संतान नहीं चाहिए, तो स्त्रियाँ त्यागमय, संयमी जीवन बितायें। भोग में क्यों पड़ें? भोग में पड़कर अन्य तरीके से संतान-निरोध करने की बात बिल्कुल निकम्मी है। समाज को जब संतान की जरूरत नहीं है, तब बहनों को सूझना चाहिए कि वे सीधे ब्रह्मविद्या के आधार पर समाज-सेवा करेंगी, ताकि उनके त्याग का बेहतर लाभ समाज को मिले। जो बहनें गृहस्थाश्रमी बन चुकी हैं, उन्हें संयम की प्रेरणा हो। भोग-विलास प्रिय है ऐसी कम ही बहनें होंगी। उनके जीवन में तो त्याग ही त्याग होता है। इसलिए बहनों को चाहिए कि यदि वे गृहस्थ बनती हैं, तो भी संयम की दृष्टि प्रधान रखकर शरीर का दुरुपयोग नहीं होने दें।

परिवार-नियोजन के कृत्रिम उपायों की बात बहनों पर दया करने की दृष्टि से की जाती है। इसके माने यह है कि उन पर आक्रमण तो जारी ही रहेगा। इस तरह के आक्रमण को बहनें लाचारी से वश हों, यह ठीक नहीं है। ऐसे आक्रमण को रोकने की ताकत बहनों में आनी चाहिए। इससे गृहस्थाश्रम की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। यह ख्याल गलत है कि पत्नी को हमेशा पति के वश होना ही चाहिए। यह तो शास्त्रीय विषय है। जिस क्रिया का पौरुष से सम्बन्ध हो, उसका निष्फल प्रयोग नहीं होना चाहिए।

संतति नियमन आदि बातें करुणावश हो रही हैं, यह मैं जानता हूँ। परन्तु ऐसी करुणा यानी करुणाग्रस्त होना है। ग्रस्त होना अच्छा नहीं। इस करुणा से स्त्री-पुरुषों में वैज्ञानिक दृष्टि नहीं आयेगी। करुणाग्रस्त होकर सोचनेवालों ने यह माना है कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध केवल मैत्री का रहे और केवल संतान-प्राप्ति के हेतु से ही संगम हो; ऐसा अभिगम मानवों के लिए सम्भव ही नहीं है। परन्तु ऐसा गृहीत मानने का कोई कारण मुझे दीखता नहीं। मैं ऐसी हार मान लेने के लिए तैयार नहीं हूँ। यह बात समझ लेना सम्भव है, समझना भी सम्भव है, क्योंकि मनुष्य मननशील प्राणी है। स्त्रियाँ इसे ज्यादा जल्दी समझ सकेंगी।

कृत्रिम साधनों से परिवार-नियोजन करने में मैं अपने देश का कल्याण नहीं देखता। मैं मानता हूँ कि इसमें आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों की हार है। मैं एक सूत्र बनाया है। *पृथ्वी को पाप का भार होता है, संख्या का नहीं।* संतान पाप से बढ़ सकती है, पुण्य से भी बढ़ सकती है। संतान पाप से घट सकती है, पुण्य से भी घट सकती है। *पुण्यमार्ग से संतान बढ़ेगी तो प्रथ्वी को थार नहीं होगा।* पुण्यमार्ग से संतान घटेगी तो नुकसान नहीं होगा। पापमर्ग से संतान बढ़ेगी तो पृथ्वी पर भार होगा और पापमार्ग से संतान घटेगी, तो नुकसान होगा। यह मेरा अपना एक विचार है। इसलिए संतति-निरोध के जो कृत्रिम उपाय चलते हैं, उनको मैं मातृत्व की विडम्बना कहता हूँ।

विज्ञान की माँग संयम

आज हर जगह विज्ञान की मदद ली जा रही है, लेकिन सेक्स में नहीं ली जा रही है। समाज की स्थिति तो ऐसी है कि सेक्स में भी साइंटिफिक ऑटिट्यूड की आवश्यकता पैदा हुई है। चारों ओर सेक्स का उधम मचाया जा रहा है। मुझे इसमें युद्ध से भी ज्यादा भय मालूम होता है। अहिंसा को हिंसा का जितना भय है, उससे ज्यादा कामवासना का है। भोग-विलास के साधन बढ़ रहे हैं। भोग की प्रवृत्ति में गलती हो रही है, यह महसूस भी नहीं होता है। महसूस होता है, तब तो कुछ निस्तार था। परिवार-नियोजन की बात का निर्लज्जता से प्रचार हो रहा है। यह नुकसानदेह है। वह देश की आत्मशक्ति को क्षीण करनेवाला है। फ्रान्स में ऐसा ही हुआ, वहाँ पुरुषार्थ शक्ति

क्षीण हो रही है। इसलिए मैं कहता हूँ कि यहाँ भी विज्ञान की मदद की जरूरत है। वैज्ञानिक वृत्ति का विकास होगा तो ध्यान में आयेगा कि परिवार-नियोजन का मतलब है आत्मसंयम, अपने पर काबू रखना। यह चीज नामुमकीन नहीं है। विज्ञान के जमाने में तो पहले से ज्यादा आसान होनी चाहिए। उस विषय का स्वरूप क्या है, परिवार का उद्देश्य क्या है, ब्रह्मचर्य की साधना क्या होती है, उसमें कौन-सी शक्ति भरी है, इन सब बातों का विज्ञान के जमाने में प्रजा को अधिक स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। जितना पहले कभी नहीं था, उतना होना चाहिए।

स्त्रियों का गर्भाधान न हो ऐसी व्यवस्था करके जो स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध होता है, उसे मैं स्त्री पर होनेवाला बलात्कार ही मानता हूँ। वह तो निरा व्यभिचार ही है। विवाह के सम्बन्धों को मैं पवित्र मानता हूँ। परन्तु यह सिलसिला शुरू होगा तो उसमें पवित्रता नहीं रहेगी। परपुरुष-सम्बन्ध ही अत्याचार होता है, ऐसा नहीं। ऐसी स्थिति में पति के साथ सम्बन्ध भी अत्याचार ही है। उसे क्षम्य कैसे माना जाय, यह मेरी समझ में नहीं आता। फिर स्त्री का स्त्री के नाते क्या गौरव और महिमा रह जायेगी? स्त्रियाँ केवल पुरुषों की वासना-पूर्ति का साधन रह जायँ तो वह असह्य है। फिर पुरुषों की बराबरी करना तो दरकिनार रहा, परन्तु आज की समाज-रचना में परिवर्तन लाने के काम में उसे जो अभिक्रम लेना चाहिए, उसमें उसकी सामर्थ्य ही नहीं रह जायेगी।

भ्रूण-हत्या महापातक

दवाइयों द्वारा जो गर्भपात किया जाता है, उससे शरीर पर बड़ा बुरा असर होता है। स्त्री पर एक तो विषय का हमला, फिर गर्भधारणा का हमला और तिस पर फिर दवाइयों का हमला। इसमें तो स्त्री पर अत्याचार की पराकाष्ठा हो जाती है। विज्ञान ने इसे नाम दिया है, स्लॉटरिंग डिफेन्सलेस लाइफ (असहाय जीव की कत्ल)। स्मृति में लिखा है वृद्ध की हत्या करना गलत है, लेकिन उससे भी ज्यादा गलत है भ्रूण-हत्या। वृद्ध अपने संरक्षण के लिए कुछ नहीं कर सकेगा, फिर भी कम-से-कम चिल्ला सकता है, पत्थर मार सकता है।

कृत्रिम साधनों के लिए आध्यात्मिक दृष्टि से मेरा जो आक्षेप है वह यह है कि—मैं एक चिन्तनशील लेखक की भाषा में बोल रहा हूँ—उससे डिस्ट्रक्शन ऑफ डिफेन्सलेस लाइफ (

असहाय जीव का नाश) होगा। उपनिषद् में कहा है कि जब पति-पत्नी का संयोग होता है, तब उस वीर्य के द्वारा एक जीवात्मा अपने जन्म का मार्ग ढूँढ़ता है। आप यदि ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और केवल सन्तानोत्पत्ति के हेतु से ही संभोग करने की गृहस्थनिष्ठा रखते हैं, तब तो पति-पत्नी के संयोग के साथ एक मानवात्मा को मूर्तिमान होने का मौका मिलना ही चाहिए। परन्तु आज मानव ही मानव का मूल्य घटा रहा है। एक ओर युद्ध में असंख्य लोग मारे जाते हैं, दूसरी ओर गर्भपात को कानून की मान्यता दिलाने का प्रयत्न हो रहा है। यह क्या दिखा रहा है? मानव का मूल्य कम हो रहा है। दुनिया में सब कुछ महँगा है, शाकभाजी भी महँगी है, सिर्फ मनुष्य सस्ता होता जा रहा है। मनुष्य का अवमूल्यन हो रहा है। आज परिवार-नियोजन के नाम से मानव को वंध्य करने की प्रक्रिया चल रही है। गर्भहत्या हो रही है। गर्भहत्या भ्रूण-हत्या है। भ्रूण-हत्या से बढ़कर पाप नहीं। यह महापातक है।

इस प्रकार से स्त्रियों की शक्ति का ह्रास हो, यह बहुत बड़ी दु:खदायक बात है। बहनों को चाहिए कि वे इस पर गम्भीरता से सोचें।

तो फिर परिवार-नियोजन करना हो, तो उसका उपाय क्या होना चाहिए?

उपाय वही है, जो महावीर स्वामी ने बताया है, रोमन कैथोलिक लोगों ने बताया है। प्रयत्न ब्रह्मचर्य का होना चाहिए। वह आदर्श होगा। उतना पूरा न हो सका, तो एक सीढ़ी नीचे - संयमयुक्त गृहस्थाश्रम हो। चार लड़के या लड़कियाँ हों तो दो गृहस्थ बनें और दो ब्रह्मचारी रहें। शादी अठारह साल के पहले न हो और बयालीस साल के बाद वानप्रस्थी बनें। इस तरह गृहस्थाश्रम चौबीस साल का होगा। हर घर में इस तरह हो तो प्रत्येक कुल में पूर्णता आयेगी।

प्राचीन काल में जमीन बहुत ज्यादा थी और लोग बहुत कम थे, तो बोला जाता था, '**अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव**' फिर भी ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा थी। वेद में आता है, **दशास्यां पुत्रान् अद्देहि। पति एकादशं कुरु**—दस पुत्रों को जन्म दे और बाद में ग्यारहवाँ पुत्र अपने पति को समझे। यानी दस पुत्र तक छूट थी। आज दस पुत्र कौन माँगेगा? इसलिए मैं कहता हूँ कि प्राचीनकाल में ब्रह्मचर्य को आध्यात्मिक मुल्य था, आत्मसक्षात्कार के लिए ब्रह्मचर्य-पालन करते

थे, परन्तु आज के सामाजिक सन्दर्भ में ब्रह्मचर्य को सामाजिक मूल्य भी प्राप्त हो गया है। डबल इंजीन लगा है।

भारतीय संस्कृति में, गृहस्थाश्रम का अनुभव ले लेने के बाद उसमें से मुक्त होने की बात आती है। यह भारतवर्ष की आकांक्षा है। गृहस्थ तो दुनियाभर में होते हैं, लेकिन भारत में गृहस्थों की आकांक्षा है कि कभी-न-कभी संसार से अलग होना है। इसलिए मनुष्य के सामने एक आदर्श होना चाहिए कि इतने वर्षों के बाद हम गृहस्थाश्रम से निवृत्त होंगे। जैसे विधिपूर्वक गृहस्थाश्रम का स्वीकार करते है वैसे ही विधिपूर्वक गृहस्थाश्रम का विसर्जन होना चाहिए। अग्निनारायण के सामने प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि आज से हम भाई-बहन के समान रहेंगे, पति-पत्नी के समान नहीं। इस प्रकार वानप्रस्थाश्रम की स्थापना करनी चाहिए और हमारी भव्य-दिव्य संस्कृति को पुनरुज्जीवित (रिवाइव) करना चाहिए। इससे विषय-वासना से मुक्ति मिलेगी।

यह मेरा परिवार-नियोजन के लिए विधायक सुझाव है। इसमें बहनें पहल कर सकती हैं।

•

(५) स्त्री, मानवमूर्ति की शिल्पकार

भगवान् कृष्ण जब अपने गुरु के घर से पढ़ाई करने के बाद वापस लौट रहे थे, तब उनके गुरु ने उनसे वरदान माँगने को कहा। तब भगवान् ने वर माँगा, **मातृहस्तेन भोजनम्**—मैं जब तक जीऊँ, मुझे माँ के हाथ का भोजन मिले। कहते हैं कि जब तक भगवान् जीये तब तक उनकी माँ जिन्दा थी और उन्हें माँ के हाथ का भोजन मिलता रहा। जब यह कहानी मैं सुनता हूँ तो मुझे लगता है कि यदि मुझे वरदान माँगने को कहा जाता तो **मातृहस्तेन भोजनम्** के साथ **मातृमुखेन शिक्षणम्** जोड़ देता।

कहते हैं, स्त्रियाँ उत्पादन का काम नहीं करतीं, सिर्फ रसोई करती हैं। अगर नयी चीज पैदा करने को उत्पादन कहते हैं तो वह तो ब्रह्मदेव ही करता है, बाकी हम सब तो कृति ही हैं। हम कोई कर्ता नहीं। जैसे काठ की कुर्सी बनाना काठ का रूपान्तर करना हे, वैसे ही गेहूँ का आटा बनाकर रोटी बनाना रूपान्तर है। कया इसे उत्पादन तब समझेंगे, जब हमारी माताएँ, बहनें कहेंगी कि हम रोटी बनायेंगी, बशर्ते कि हमें ठीक रोजी मिले?

माता अपने बच्चे की सेवा रात-दिन करती है, उसकी रिपोर्ट उसके पास माँगी जाय, तो वह देगी नहीं; क्योंकि यद्यपि उस सेवा करने में उसे कष्ट सहने पड़े हैं, वे कष्ट उसे मालूम नहीं हुए। अपने पास कम खाना है, तो वह पहले बच्चे को खिलायेगी, खुद भूखी रहेगी, फिर भी वह आन्तरिक सुख अनुभव करेगी। यही माता का मातृत्व है। इसका मतलब यह हुआ कि माता की वह भावना बच्चों के साथ सर्वोदय-भावना है। नि:सन्देह उसकी भावना, उसका समाज या अपना सर्व अपने बच्चे तक ही मर्यादेत है, इसलिए उसकी सर्वोदय की भावना भी मर्यादित है।

अपने हाथ से रसोई बनाकर लड़के को खिलाने से बढ़कर वशीकरण शक्ति क्या हो सकती है? गांधीजी ने भी हम लोगों को आश्रम में रसोई परोसी है। इससे ज्यादा सेवा दूसरी कोई हो नहीं सकती। मातृ-वात्सल्य की बड़ी कीमत है। इसलिए मैं तो रसोई की बड़ी कीमत करता हूँ और कहता हूँ कि संगीत, चित्रकला, नृत्य जैसी ललित कलाएँ फाईन आर्ट हैं, परन्तु रसोई करना तो उससे बढ़कर—फाईनर आर्ट है। यह कला भी माता की बहुत बड़ी शक्ति हो सकती है। पर आज

तो होटल खुल रहे हैं और धीरे-धीरे यह कला भी माताओं के पास से जा रही है। स्त्रियों को टप्-टप् टायपिस्ट का काम, यान्त्रिक काम दे देते हैं। कहते हैं स्त्रियों की उँगलियाँ तेज चलती हैं, इसलिए उन्हें दफ्तर में बिठाते हैं। यह काम स्त्रियों को नहीं करना चाहिए, ऐसा मैं नहीं कहता। मेरा कहना यही है कि उन्हें ऐसे काम करने चाहिए, जिनसे स्त्री-शक्ति का विकास हो और शान्ति-रक्षा हो। जिस धन्धे में पावित्रय हो, ऐसा काम करने का आग्रह स्त्रियों को रखना चाहिए।

मुझे स्मरण है कि जब किसी के यहाँ रसोई की अड़चन पड़ती, मेरी माँ स्वयं वहाँ पहुँच जाती और रसोई बना आती। अपने घर की रसोई पहले ही वह बना लेती। इस पर मैंने पूछा, ‘यह स्वार्थ क्यों? पहले हमारे लिए पकाती हो, फिर उनके लिए?’ माँ ने कहा, ‘यह स्वार्थ नहीं परमार्थ ही है। अगर पहले उनके घर जाऊँगी और बाद में तुम्हारी रसोई करूँगी तो तुम्हें खाने के समय गरम रसोई मिलेगी, लेकिन उनके खाने के समय वह सबेरे की ठण्डी रसोई मिलेगी।‘

माता का असली मातृत्व रसोई में ही है। अच्छी-से-अच्छी रसोई बनाना, बच्चों को प्रेम से खिलाना, इसमें कितना ज्ञान और प्रेमभावना भरी है! रसोई का काम यदि माताओं से ले लिया जाय, तो उनका प्रेम-साधन ही चला जायेगा। प्रेमभाव प्रकट करने का मौका कोई माता छोड़ने के लिए तैयार नहीं होगी। उसी के सहारे तो वह जिन्दा रहती है! कोई यह न समझे कि किसी-न-किसी बहाने स्त्रियों पर रोटी पकाने का बोझ मैं लादना चाहता हूँ। मैं तो उनका बोझ हल्का करना चाहता हूँ। इसलिए हमने आश्रम में तो रसोई का काम मुख्यतः पुरुषों से ही कराया है। मेरे कहने का मतलब इतना ही है कि रसोई का काम यदि बहनें छोड़ देंगी, तो उनके हाथ से ज्ञान-साधन और प्रेम-साधन चला जायेगा।

मातृमुखेन शिक्षणम्

बच्चे को सबसे पहले तालीम देनेवाली माँ है। माँ प्रथम गुरु हे। पिता और गुरु बाद में आते हैं। जब तक माँ-बाप मौजूद हैं और बिना माता-पिता के बच्चे पैदा नहीं होते तब तक बच्चों को ज्ञान मिलता रहेगा। परमेश्वर की योजना ही ऐसी बनी है कि जहाँ उसने बच्चे को भूख दी, वहाँ माँ के स्तन में दूध भी पैदा किया। बच्चे की भूख की प्रेरणा के साथ माँ को पिलाने की प्रेरणा दी। इस

तरह बचपन से माँ के जरिये प्रेम की तालीम दी जाती है। बच्चों को मातृभाषा सिखाने के लिए सरकार करोड़ों रुपये खर्च करती है, लेकिन माँ तो दूध पिलाते-पिलाते बच्चे को मातृभाषा सिखाती है। दुनियाभर के बच्चे भाषा माँ से सीखते हैं। माँ बच्चे से कहती है कि यह देखो चाँद। बच्चा सुनता है। माँ फिर उससे पूछती है कि चाँद किधर है बताओ। बच्चा उँगली से बताता है। बाद में वह बोलने लगता है—च्, च्, च् चाँद कहता है। मतलब पहले वस्तु का ग्रहण करता है, फिर बोलता है। यह जो सारा ज्ञान है, भाषा सिखाने का ज्ञान है, वह क्या विद्यालयों की शिक्षा से कम है? दो-ढाई साल में शून्य में से ज्ञान पैदा किया जाता है और माताएँ ही यह सब करती हैं। शिक्षाशास्त्री अनुभव और निरीक्षण से कहते हैं कि बच्चे को शुरू के साल दो साल में जितना ज्ञान मिलता है, उतना ज्ञान आगे की सारी जिन्दगी में नहीं मिलता। इसलिए दुनियाभर के लोगों ने माना है कि अगर माताएँ संस्कारवान बनीं, तो दुनिया बचेगी। सबसे प्रथम और सबसे श्रेष्ठतम गुरु तो माता ही है।

स्त्रियों ने दुनिया में सदाचार जिन्दा रखा है इसीलिए उन पर बच्चों की जिम्मेवारी होती है। बच्चों में अच्छी आदतें डालना और उनको साफ-सुथरा रखना स्त्रियों के हाथ में है। स्त्रियाँ अपने बच्चों को सच्चरित्र बनायेंगी, तो देश को अच्छे नागरिक मिलेंगे। बच्चे तो बड़ी सम्पत्ति हैं। इनसे बढ़कर कौन-सा धन है? कौशल्या की कोख से भगवान् रामचन्द्रजी और देवकी की कोख से भगवान श्रीकृष्ण पैदा हुए। जितने भी सत्पुरुष हुए हैं, उनकी माताएँ धर्मपरायण थीं। जिस घर की स्त्रियाँ भगवान् का स्मरण करती हैं, सत्य का पालन करती हैं, प्रेममाव से रहती हैं, उस घर में अच्छी सन्तान पैदा होती है।

किस माँ के पेट से कौन पैदा होगा, कह नहीं सकते। कहते हैं कि कौशल्या और देवकी, दोनों जानती थीं कि उनके घर में प्रभु का अवतार होनेवाला है। परन्तु अपने बच्चे को जब गोद में लिया तब वे भूल गयीं कि यह तो प्रभु का अवतार है और उसे बच्चा मानकर ही उसकी परवरिश की। जो जानती थीं, वे भी भूल गयीं, तो जो जानती ही नहीं, वे भूल जायेंगी, इसमें कौन-सा आश्चर्य! इसलिए हमारा कर्तव्य है कि देश में जो भी बच्चा जन्मे, उसमें भगवान् की मूर्ति छिपी

है, ऐसा मानकर ही उसका पालन-पोषण हो। परन्तु अपने देश में जनसंख्या अधिक होने से और विषमता होने से बच्चों के उत्तम संगोपन की व्यवस्था नहीं हो पायी है। बालकृष्ण की उपासना तो हमारे यहाँ बहुत चली, परन्तु बालकों की उपासना नहीं चली।

मेरा जीवन बनाने में अनेकों के साथ-साथ माँ के भी अनन्त उपकार हैं। मुझे बहुत ग्रन्थ पढ़ने को मिले हैं, जो अनुभव से भरे हैं। और सत्संगति भी मिली है। उन सबको मैं एक पलड़े में रखता हूँ और माँ से मुझे साक्षात् भक्ति का जो शिक्षण मिला, उसे दूसरे पलड़े में रखकर तौलता हूँ तो वह दूसरा पलड़ा भारी लगता है। मुझे सबसे ज्यादा बल यदि किसी ने दिया है, तो वह मेरी माँ ने। हमारी माँ संसार में थी, लेकिन उसके चित्त में, उसकी वाणी में संसार नहीं था। माँ से मुझे बहुत सीखने को मिला। इसीलिए मैं कहता हूँ कि शिक्षण तो माँ के मुँह से ही मिलना चाहिए।

मेरे विचार में प्राथमिक शालाएँ स्त्रियों के हाथ में ही आनी चाहिए उनमें लड़के-लड़कियाँ एकसाथ पढ़ें। अगर सारा प्राथमिक शिक्षण स्त्रियों के हाथ में रहेगा, तो बच्चों का विकास ठीक-ठीक होगा, वे ठीक रास्ते लगेंगे। समाज को मर्यादा में रखने की कुछ शक्ति स्त्रियों में आयेगी। आज अगर स्त्रियों में उतनी योग्यता का शिक्षण नहीं है, तो पंचवर्षीय योजना में उसकी व्यवस्था होनी चाहिए। वस्तुतः पुरुषों में छोटे बच्चों को तालीम देनेलायक कोई अक्ल नहीं दीखती। बच्चे बड़े हो जाने के बाद भले ही पुरुष उन्हें तालीम दे सकें, परन्तु प्राथमिक स्कूलों के बच्चों के साथ कैसा व्यवहार किया जाय, यह पुरुष क्या जानेंगे? वह सारा-का-सारा क्षेत्र स्त्रियों के हाथ में आना चाहिए। साहित्य, तालीम, धर्म का आयोजन अदि क्षेत्र में स्त्रियों को स्थान-मिलना चाहिए।

स्त्रियों की शिक्षा

जहाँ तक स्त्रियों की शिक्षा का सवाल है, उसमें अध्यात्मज्ञान पहले दिया जाय। हमारे यहाँ की स्त्रियाँ अध्यात्म-परायण थीं। महाभारत में है कि सुलभा ने जनक को ज्ञान दिया। इस तरह की और भी कहानियाँ हैं। वह हालत आज नहीं है। इसलिए पहली आवश्यकता अध्यात्मज्ञान की है। हम देह से अलग, अविनाशी, आत्मरूप है, परमेश्वर हमारे अन्दर विराजमान है, उसके दर्शन इसी जन्म में हो सकते हैं, सारे जीव हमारे ही रूप हैं—इस आध्यात्मिक विचार में बहनें प्रवीण

हों। तालीम का सारा आधार आत्मा का ज्ञान हो। स्त्री-शिक्षण में सत्य-निष्ठा और तपस्या की सख्त जरूरत है, ताकि स्त्री में मौजूदा समाज के खिलाफ बगावत करने की हिम्मत आये। जिसके अन्दर अध्यात्मविद्या है, उसे सारी दुनिया भी नहीं दबा सकती। मेरा विश्वास है कि अध्यात्मविद्या से जबरदस्त क्रान्ति की जा सकती है।

स्त्री और पुरुष, दोनों की आत्मा समान संस्कारवान होती है। क्षुधा, तृष्णा आदि वासनाएँ भी दोनों में समान होती हैं। दोनों का सृष्टि के साथ का सम्बन्ध, यानी विज्ञान का सम्बन्ध भी समान है। इससे स्पष्ट है कि दोनों की शिक्षा के अधिकतर अंश समान ही होंगे। गुण-विकास के नियम भी दोनों को समान ही लागू होते हैं। इसे ध्यान में लेकर मैं कहता हूँ कि स्त्री-पुरुष को समान शिक्षा मिलनी चाहिए। और एकसाथ ही मिलनी चाहिए।

सिर्फ कर्मयोग में फरक आता है। शारीरिक श्रम के कुछ काम ऐसे होंगे, जो स्त्रियों और पुरुषों के भिन्न रहेंगे। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि आजकल जिस प्रकार चल रहा है उस प्रकार हरएक काम अलग-अलग निश्चित हो। उदाहरण के लिए रसोई का काम लीजिए। सामान्यतः स्त्रियाँ ही रसोई बनाती हैं, लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिए कि वह स्त्रियों का ही काम माना जाय। पुरुषों को भी इसमें प्रवीण बनना चाहिए। मैंने कहा है कि रसोई एक उत्पादक क्रिया है। और गेहूँ के उत्पादन से लेकर सोचना होगा, तो रोटी बनाना आखिरी क्रिया होगी। उसमें गलती नहीं चल सकती। शुरू की क्रिया में गलती हो तो कम नुकसान होता है, आखिरी क्रिया में हो तो ज्यादा नुकसान होता है। ऐसे इस सुसंस्कृत निर्दोष उत्पादक कार्य से हम लड़कों को कैसे वंचित रख सकते हैं? यह तो उन पर अन्याय होगा। इस प्रकार अगर हम लड़के और लड़कियों के कामों को अलग बना देंगे, तो समाज के टुकड़े हो जायेंगे और उसका एक अंग बोझरूप बन जायेगा। हालाँकि मैं यह मानता हूँ कि रसोई की प्रधान जिम्मेवारी स्त्री की रहेगी, लेकिन वह उन्हीं का काम न समझा जाय। रसोई की तो केवल एक मिसाल दी। घर के सभी कामों में पुरुषों को अवश्य हिस्सा लेना चाहिए। वैसे ही बाहर के कामों में स्त्रियों को भी योग देना चाहिए।

आज लड़के-लड़कियों की अभिरुचि और शालेय विषयों के चुनाव में जो फरक दिखायी देता है, उसका कारण है सामाजिक उपाधियाँ। रसोई, सीना-पिरोना इत्यादि विषय लड़कियों को अधिक पसन्द होते हैं, ऐसा कहना गौण ही है। मैंने ऐसी कई लड़कियाँ देखी है, जिनको गणित में रुचि है। और रसोई बनाने का शौक रखनेवाला पुरुष तो मैं खुद ही हूँ। मुझे गणित की भी रुचि है। मुझे सभी विषय अच्छे लगते हैं। आज के कृत्रिम वातावरण को यदि हटा दें और बेमतलब के निष्क्रिय बौद्धिक विषयों की पढ़ाई बन्द कर दी जाय, तो मेरे समान सभी को सब विषय अच्छे लगने लगेंगे और पढ़ाई में स्त्री-पुरुष का भेद भी नहीं रहेगा।

सांस्कृतिक प्रभाव पड़े

स्त्रियों में बच्चे की परवरिश करने का गुण होता है, क्योंकि उनमें पुरुषों से अधिक एकाग्रता होती है। यह एक कुदरती देन है। इस गुण के बिना बालसंगोपन हो ही नहीं सकता। इस गुण के कारण स्त्रियों की अवस्था ध्यानयोग और भक्तियोग के लिए अधिक अनुकूल है। कर्मयोग में भी ऐसे काम, जिसमें अधिक एकाग्रता की जरूरत पड़ती है, स्त्रियाँ कुशलतापूर्वक कर सकती हैं।

स्त्रियों को वे सारे क्षेत्र हाथ में लेने चाहिए, जो सांस्कृतिक माने जाते हैं। साहित्य, तालीम, धर्म का आयोजन आदि क्षेत्रों में स्त्रियों को स्थान मिलना चाहिए। आज तक इन क्षेत्रों में प्रकटरूप में ज्यादातर पुरुषों का हाथ रहा है। स्त्रियों का हाथ अप्रकटरूप में ही रहा है। दुनिया के महान् काव्य, जिनका दुनिया पर असर है, चाहे वाल्मीकि की रामायण हो, व्यास का महाभारत हो, होमर, दाँते, मिल्टन आदि के काव्य हों, सब-के-सब पुरुषों ने लिखे हैं । वेद में कुछ स्त्रियाँ भी ऋषि हैं, जिन्होंने मंत्र रचे हैं। फिर बीच में मीराबाई आदि दो-चार नाम आते हैं, परन्तु कुल साहित्य पर स्त्रियों का असर नहीं रहा है।

इसके अलावा स्त्रियों को विशेष काम यह करना चाहिए कि वे आश्रमों की रचना करें। गांधीजी, श्री अरविन्द आदि ने आश्रम खोले, जिनमें स्त्री-पुरुष दोनों रहते थे। परन्तु किसी स्त्री ने ऐसा आश्रम नहीं खोला, जिसमें दोनों रहते हों। गांधी-अरविन्द के आश्रमों ने, स्वामी श्रद्धानन्द के गुरुकुल ने, रवीन्द्रनाथ के शांति निकेतन ने भारत पर जो असर डाला, वैसा असर देश पर

डालनेवाले आश्रम स्थापित करनेवाली स्त्रियाँ क्यों नहीं निकल सकतीं? देश पर असर डालने के काम को स्त्रियाँ उठायेंगी तो बहुत बड़ा काम होगा। उनके कार्य का बड़ा भारी प्रभाव, स्थायी प्रभाव, सांस्कृतिक प्रभाव पड़ेगा।

स्त्रियों पर घर का, बच्चों के पालन का जिम्मा है, जो एक बहुत बड़ा काम है। हम अपनी माता के प्रति बहुत कृतज्ञ हैं। तो वह उपकार तो अपार है। वह तो चलेगा ही। स्त्रियों का वह अधिकार कोई छीन नहीं सकता। अगर पुरुष वह अधिकार छीन सकते, तो छीन लेते। परन्तु परमेश्वर ने योजना ही ऐसी बनायी है कि बच्चा माँ के उदर से पैदा होता है, इसलिए वह पुरुषों के हाथ में आ ही नहीं सकता। वे स्त्रियों को बाकी कुल कामों से हटा रहे हैं, पर इस पद से हटा नहीं सकते। इस प्रकार **मातृहस्तेन भोजनम्** और **मातृमुखेन शिक्षणम्** होगा तो हिन्दुस्तान की प्रभा एकदम फैलेगी और दुनिया पर उसका असर पड़ेगा।

•

(६) प्रकीर्ण

हमले का प्रतिकार कैसे करें?

प्रश्न—कोई हथियार पास में न हो और महिलाश्रम (वर्धा) जैसी संस्था पर गुण्डे हमला कर दें, तो ऐसी हालत में क्या करना चाहिए?

उत्तर—इसका जवाब बिल्कुल आसान है। आक्रमण होते ही बिगुल फूँककर सबको एकत्र कर लिया जाय और भगवान् का भजन शुरू कर दें। परन्तु इसके लिए श्रद्धा की जरूरत है।

इससे उलटे, मान लीजिए कि आश्रम की बहनों के हाथ में हम पिस्तौल दे दें, तो क्या होगा? यह भी सम्भव है कि आक्रमण करनेवाले के पास पिस्तौल से ज्यादा तेज हथियार हो। तब हमारे पिस्तौल निकम्मे साबित होंगे। महायुद्ध में शरीरबल की विफलता का हम काफी दर्शन कर चुके हैं। एक तरफ दस-दस, बीस-बीस लाख की सेनाएँ आक्रमन करती हमने देखी हैं और दूसरी तरफ यह भी देखा कि कितनी ही बड़ी सेनाएँ हिम्मत छोड़कर, अपने शस्त्र डालकर शरण में आयी हैं। इसलिए हाथ में शस्त्र आयेगा तो समस्या हल होगी, हिम्मत आ ही जायेगी, ऐसी बात नहीं है। सामनेवाला हमसे बलवान हो तो हमारे हथियार का कोई उपयोग नहीं होता।

इसलिए मैं कहता हूँ कि हमें आत्मशक्ति पर निर्भर रहना चाहिए। स्त्रियों में भी आत्मशक्ति की कोई कमी नहीं होती। परन्तु उसे प्रकट करने के लिए जीवन को वैसा बनाना होता है। भोग-विलास पर आधारित जीवन मौके पर काम नहीं देता।

एक शिकारी की कहानी है। वह शेर के एक बच्चे को पकड़कर अपने तंबू में ले आया। शेर और शेरनी, दोनों बच्चे को खोजने आये। बन्दूक चलायी गयी। बन्दूक की आवाज सुनकर शेर भाग गया। लेकिन शेरनी नहीं भागी। वह अपने बच्चे के संरक्षण के लिए खड़ी रही। अपने ढंग से बार-बार तम्बू पर हमला करती रही, जहाँ उसका बच्चा रखा था। उसको बन्दूक दिखायी जाती तो दो-चार कदम पीछे हट जाती, फिर आती। आखिर उसको मारना पड़ा। शेर और शेरनी का यह फरक शिकारियों ने देखा है। तो स्त्री क्यों नहीं बहादुर हो सकती? इसलिए यह मानना कि

स्त्री रक्षणीय है, ठीक नहीं। वह तो माता है और उसके पास दुनिया को बचाने का सामर्थ्य है। और आगे आनेवाला युग महिला का है, माता का है।

मैं तो कहता हूँ कि आनेवाले जमाने में दुनिया की हालत ऐसी होनेवाली है कि समाज को जो रक्षण पुरुष न दे सके, वह स्त्रियाँ दे सकेंगी। पुरुषों ने सारा मामला बिगाड़ दिया है। ऐसी हालत में स्त्रियाँ केवल स्वरक्षित बनकर ही कृतकृत्य न हो जायें, वे सारे समाज के रक्षण का ही कार्य उठायें। विज्ञान-युग ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी है। अब रक्षण की सम्पूर्ण जिम्मेदारी अहिंसा पर आनेवाली है और इसलिए अब स्त्रियाँ ही समाज रक्षक बननेवाली हैं। इसलिए उन्हें भी स्वयंप्रज्ञ बनना होगा। मनुष्य में जब स्वयं कर्तृत्व आता है तभी उसे स्वयंप्रज्ञा प्राप्त होती है।

पतिव्रता के माने

प्रश्न—पतिव्रता-धर्म क्या है?

उत्तर—प्राचीनकाल से हिन्दुस्तान में यह प्रथा चली आयी है कि प्रत्येक शुभ कार्य में स्त्री का सहयोग आवश्यक है। तभी कोई कार्य पूर्ण माना जाता है। हिन्दू-धर्म में कहा है कि पत्नी के बिना यज्ञ कर नहीं सकते। रामायण में है, रामचन्द्र को यज्ञ करना था, सीता को तो वन में पहुँचाया गया था, तो आखिर सीता की मृण्मयी मूर्ति बनाकर रखनी पड़ी। इसका मतलब यह है कि गृहस्थाश्रमी मनुष्य पत्नी को छोड़कर सार्वजनिक सेवाकार्य नहीं कर सकते। वह सहधर्मचारिणी कही गयी है। लेकिन आज सार्वजनिक कामों में उसकी बुद्धि का उपयोग होता दिखायी नहीं देता। उसको ज्ञान-प्राप्ति का मौका नहीं मिलता। ज्ञान की बातें सुनने का मौका तो सभी को मिलना चाहिए। स्त्रियों को सहधर्मचारिणी कहा, इसका मतलब, ज्ञान-प्राप्ति, सेवाकार्य, आध्यात्मिक साधना सबमें उनका हिस्सा होना चाहिए।

आज पतिव्रता का बिल्कुल गलत अर्थ किया जाता है कि पति भला-बुरा कैसा भी हो पत्नी को उसमें लीन हो जाना चाहिए। इस प्रकार स्त्री को दासी मानना बिल्कुल गलत ख्याल है। इसका हम विरोध करना चाहते हैं। स्त्री एक स्वतंत्र वस्तु है, एक जीव है। पुरुष में जीवात्मा जितना बलवान है, उतना ही बलवान स्त्री में है। उसका परमेश्वर के साथ सीधा सम्बन्ध है। पत्नी का

परमेश्वर के साथ पति की एजेन्सी के मार्फत सम्बन्ध है, यह समझना गलत है। अगर पत्नी को पति की एजेन्सी की जरूरत है तो पति को भी परमेश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए पत्नी की एजेन्सी की जरूरत होगी।

पतिव्रता का अर्थ है, पति के व्रत में योग देना। पति शराबी हो तो उसके शराब पीने में मदद नहीं देना है, बल्कि उसका हाथ पकड़ना है और शराब का प्याल फेंक देना है। मार खानी पड़े तो मार खाकर भी विरोध जारी रखना चाहिए, कह देना चाहिए कि आज मैं तुम्हारे लिए रसोई नहीं बनाऊँगी। यह है पतिव्रता-धर्म। स्त्री का यह धर्म है कि वह पुरुष को अंकुश में रखे। स्त्रियाँ पुरुषों की बराबरी करने में लगें, उन्हें अंकुश में रखने की शक्ति प्राप्त करें।

ज्ञानेश्वरी में एक वाक्य आया है, **पतीचिया मता, अनुसरोनि पतिव्रता**। पति के मत का अनुसारण करने में स्त्री का कल्याण है। जब मैंने यह पढ़ा तब सोचता ही रहा कि ज्ञानदेव को यह क्या सूझा? पति का मत हो कि चोरी करके पैसा लायें, तो क्या सहधर्मचारिणी के नाते स्त्री को उसमें सहकार देना होगा? ज्ञानदेव के वाक्य का यह आशय हो नहीं सकता। बाद में मैंने ज्ञानेश्वरी का राजवाड़े का संशोधित संस्करण देखा, जिसमें पुराने पाठ-भेद बताये गये थे, तो उसमें यह पाठ मिला—**पतीचिया व्रता**, **अनुसरोनि पतिव्रता**—पति के व्रत को बढ़ावा देनेवाली पतिव्रता होती है। यह जब पढ़ा तब मेरा समाधान हुआ। ज्ञानदेव ने यह नहीं लिखा होगा कि पति के मत का अनुसरण करें, उन्होंने व्रत की ही बात लिखी होगी—'पतिव्रता' शब्द से भी वही अभिप्रेत होता है, परन्तु समाज को ज्ञानदेव का विवरण अच्छा नहीं लगा और उन्होंने 'व्रता' के बदले 'मता' कर दिया।

स्त्री दासी नहीं, स्वतंत्र हस्ती

कुछ लोग चूड़ी आदि गहनों को पातिव्रत्य का प्रतीक मानते हैं। मैं पूछता हूँ कि क्या पातिव्रत्य एकांगी वस्तु है? क्या पुरुष को भी पत्नीव्रती नहीं होना चाहिए? पत्नीव्रत के लिए यदि प्रतीक की जरुरत नहीं है, तो पातिव्रत्य के लिए जरुरत क्यों होनी चाहिए? इसमें सवाल पातिव्रत्य

का नहीं है। सवाल यह है कि स्त्री पुरुष की दासी है या नहीं? तो उसे दासी मानना बिल्कुल गलत ख्याल है। उसका स्वतंत्र अस्तित्व है।

स्त्रियों के नाक में, कान में छेद करके उनमें गहने पहनाये जाते हैं, यह सारा ईश्वर के खिलाफ अविश्वास का प्रस्ताव है। जन्म के साथ कोई बच्चा गहने पहनकर पैदा नहीं होता। ईश्वर चाहता तो क्या इस तरह नाक, कान को छेद नहीं बना सकता था? ईश्वर ने मोती में भी छेद नहीं रखा। परन्तु हम समुद्र में गोता लगाकर मोती ऊपर लाते हैं, उसमें छेद करते हैं और स्त्रियों के नाक-कान में छेद कर उसमें डालते हैं। उसके नाक, कान, गला, हाथ, पाँव आदि सबमें सुवर्ण-मोती के गहने पहनाते हैं, तो क्या वहाँ पूरी कोलार की खान इकट्ठा करनी है? पुरुषों ने ही उसके हाथ-पाँव में बेड़ी डाल दी है। वह सुवर्ण की है इसलिए बेड़ी नहीं कहलाती। परिणाम यह हुआ कि वह अकेले बाहर जाने में डरने लगी। पुरुषों ने उसे अपना बैंक ही बना दिया है। इन गहनों का कोई प्रयोजन नहीं है। असम के माधवदेव ने गाया है, **कर्णपथे भकतर हियात प्रवेशि हरि**—भगवान् कानों द्वारा भक्त के हृदय में दाखिल होते हैं। कर्ण का भूषण गहना नहीं है, हरिनाम है। मैं गाँव-गाँव घूमता हूँ। गाँवों के सामने कर्जे का बड़ा सवाल होता है। मैं कहता हूँ कि बहनें निकाल दें ये गहनें और मिटा दें गाँव का कर्जा! स्त्री को 'भीरु' कहकर वह पुरुषों के हाथ में सुरक्षित रहे ऐसा हम मानते हैं, यह धर्म-विचार नहीं है। धर्म कहता है कि हरएक में आत्मा है।

उपनिषद् में मैत्रेयी की कहानी है। याज्ञवल्क्य ऋषि की दो पत्नियाँ थीं। आखिरी उम्र में सारा छोड़कर वे जंगल में जाने लगे और अपनी सम्पत्ति के दो हिस्से करके अपनी दोनों पत्नियों को सौंप दिया। तब उनकी पत्नी मैत्रेयी उनसे पूछती है कि आप यह सब क्यों छोड़ रहे हैं। उन्होंने कहा, अमृतत्व (मोक्ष) की प्राप्ति के लिए जा रहा हूँ। मैत्रेयी ने पूछा, क्या उसके लिए यह सम्पत्ति-संग्रह छोड़ना पड़ता है? याज्ञवल्क्य ने जवाब दिया—**अमृतत्वस्य तु न आशा अस्ति वित्तेन**—सम्पत्ति से अमृतत्व मिलने की कोई आशा नहीं। यह जवाब सुनकर मैत्रेयी भी सब छोड़कर अपने पति के साथ अमृत्व की खोज में चली गयी।

यह जो देह मिली है, उसका एकमात्र ध्येय आत्मसाक्षात्कार है। वह जिस चीज से मिलता है, उसी की ओर ध्यान रहे। जीवन में देह-परायणता कम हो, आत्म-परायणता बढ़े, बहनों को यह देखना चाहिए। गृहस्थाश्रम में भी इसकी साधना करनी है।

ब्रह्मचर्य ही मूलभूत आदर्श

प्रश्न—मेरी माँ कहा करती थी कि लड़कियों को पाठशाला जाने की क्या जरूरत है? उनकी शाला तो पति का घर ही होता है।

उत्तर—यह ठीक है कि पति के घर में भी स्त्री का काफी शिक्षण होता है, लेकिन यह ख्याल गलत है कि स्त्री का धर्म पुरुषों की सेवा करना है। बिल्कुल गलत ख्याल है। आत्मा में स्त्री-पुरुष-भेद है नहीं।

मैं यह मानता हूँ कि मातृभावना भी एक महान् कर्तव्य है। उसकी योग्यता भी मैं कम नहीं समझता। परन्तु हमारे सीता, सती-सावित्री आदि जो आदर्श हैं, उनके मूल में ब्रह्मचर्य का आदर्श है। पुरुष ईश्वर का नाम लेता हुआ दुनियाभर में घूम सकता है, उसी प्रकार स्त्रियों के लिए भी कोई आदर्श होना चाहिए। मीराबाई की कहानी जरूर हमारे सामने है। फिर भी इस अलौकिक और अद्वितीय कहानी ने स्त्री को स्वातंत्र्य दिलाने में कोई मदद नहीं की है। मीराबाई के उदाहरण का किसी ने अनुकरण नहीं किया। स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य, संन्यास, वेदाभ्यास, आत्मचिन्तन का स्वतंत्र रूप से अधिकार होना चाहिए। इसके बिना हमारी प्रगति में रुकावट आ गयी है। हिन्दू धर्म में स्त्रियों को वैधव्य की स्थिति में ब्रह्मचर्य का अधिकार दिया गया है। लेकिन वह तो लाचारी है।

स्त्रियों में वात्सल्य-भाव स्वाभाविक तौर पर रहता है। अगर वे माता बनना चाहेंगी और माता बनेंगी तो मैं उन्हें दोष नहीं दूँगा, बल्कि उनका गुण ही गाऊंगा। लेकिन अगर कोई स्त्री ब्रह्मचारी रहना चाहे, तो उसे क्यों रोकना चाहिए? लड़की है, इतने मात्र से यह मान लेना कि उसको दूसरे घर भेजना ही चाहिए, यह सोच, यह वृत्ति ठीक नहीं।

कोमलता की शक्ति

प्रश्न—स्त्रियाँ कोमल स्वभाव की होती हैं, पर शक्ति का रूप उन्हीं को माना जाता है। पुरुष को क्यों नहीं माना जाता?

उत्तर—क्योंकि कठोरता में जितनी शक्ति है, उससे कोमलता में बहुत अधिक शक्ति है। जिसमें कोमलता होगी, वह दूसरे के हृदय में प्रवेश करेगा और वहीं रह जायेगा। जो कठोर होता है, वह हृदय में प्रवेश नहीं करता। वह हाथ पकड़ेगा, कान पकड़ेगा, लेकिन हृदय को नहीं पकड़ेगा। कान तो बैलों के पकड़ने चाहिए। लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि जो कोमल स्वभाव के होते हैं, वे बैलों के हदय पर भी कब्जा कर लेते हैं। बैल उनके उत्तम सेवक होते हैं। 'एंड्रोक्लीस और सिंह' की कहानी मशहूर है। उसने सिंह को कोमलता से वश में कर लिया था। तो कोमलता भी मजबूत शक्ति होती है।

सीता-त्याग पर

प्रश्न—राम ने सीता का त्याग करके उस पर अन्याय किया है, ऐसा आपको नहीं लगता?

उत्तर—यह विवाद का विषय है। मनुष्य के सामने कभी-कभी धर्म संकट उपस्थित हो जाता है। यानी दो धर्म सामने आते हैं। ऐसे वक्त किस धर्म को प्रधानता दी जाय और किस धर्म को गौणता, यह प्रश्न उसके सामने खड़ा रहता है। राम के सामने भी दो धर्म थे। एक था राजधर्म और दूसरा था पतिधर्म! इनमें से किसी एक को स्वीकार कर दूसरे को छोड़ना पड़ता है। या तो राज्य को छोड़कर पत्नी को स्वीकार करना पड़ता, जिसमें एक आपत्ति थी; या पत्नी को छोड़कर राज्य स्वीकार करना पड़ता, और उसमें भी एक आपत्ति थी। अर्थात् दोनों तरफ से आपत्तियाँ थीं। और राम कुछ भी करते तो भी उन्हें पाप लगनेवाला ही था। तब उन्होंने ऐसा विचार किया कि सीता का उन पर इतना विश्वास है कि उसकी गलतफहमी नहीं हो सकती। सीता विश्वास का विषय है। प्रजा के बारे में राम को ऐसा विश्वास नहीं था। इसलिए राम ने लक्ष्मण को कहा कि सीता को जंगल में छोड़ देना और यह भी कहा कि आश्रम के निकट छोड़ना। राम को विश्वास था

कि सारा विश्व भी मुझपर निष्ठुरता का आरोप करे तब भी सीता मुझ पर वैसा आक्षेप नहीं करेगी। अब चाहें तो आप राम पर आतक्षेप लगायें, पर सीता कभी नहीं लगायेंगी।

रक्षा-घरों के बारे में

प्रश्न—रक्षा-घरों (रेस्क्यू होम) में स्त्रियों का पुनर्वसन कैसे किया जाय?

उत्तर—इस विषय में मेरा मत क्रान्तिकारी है। मैं सारे धर्मों में सत्य को श्रेष्ठ धर्म मानता हूँ। और सबसे बड़ा अधर्म असत्य है। व्यभिचार भी असत्य जितना बड़ा पाप नहीं। परन्तु इधर असत्य को गौण महत्त्व देकर व्यभिचार, हत्या आदि को बड़ा पाप माना जाने लगा है। परिणाम यह है कि सारे पापों को छिपाने का प्रयत्न किया जाता है। इस कारण सुधार हो नहीं पाता। हम रोग को छिपाते नहीं हैं, क्योंकि हम चाहते हैं कि रोग दूर हो और लोगों की मदद भी हमें मिले। इसी प्रकार हमसे अगर कोई नैतिक गलती हो जाय, तो माता-पिता और मित्रों को बताना चाहिए। और कहना चाहिए कि मुझे सँभालिये, ठीक कीजिए। परन्तु आजकल ऐसी गलतियों को छिपाने की प्रवृत्ति है, क्योंकि प्रकट करने पर व्यक्ति के प्रति घृणा पैदा होती है। कुष्ठ रोगी अपना रोग छिपाते हैं, क्योंकि समाज में उसके प्रति घृणा है। लेकिन उसका परिणाम यह होता है कि रोग प्रारम्भ में समाज को मालूम नहीं होता और छिपाने के कारण बढ़ता तो जाता ही है, बढ़ने के बाद ठीक भी नहीं हो सकता। अगर शुरुआत में ही बता दें तो रोग दुरुस्त हो सकता है। वैसे ही नैतिक पापों का है। इसलिए नैतिक पापों को छिपाना नहीं चाहिए। छिपाने से सबसे बड़ा जो अधर्म है, असत्य, वह होता है।

इसलिए समाज ही ऐसा बनना चाहिए, जिसमें हम पापों को घृणा का विषय नहीं मानेंगे। किसी के हाथ से गलती होती है, तो उसे ठीक करते हैं, वैसी ही भावना पाप के सम्बन्ध में होनी चाहिए। सत्य की महिमा बढ़ानी चाहिए और असत्य को सबसे बड़ा पाप समझना चाहिए। यह दृष्टि रखकर और ये बहनें दया की पात्र हैं, घृणा की नहीं, यह ध्यान में रखकर ही रक्षा-घरों में काम करना चाहिए।

शराब-बन्दी के बारे में

स्त्री-शक्ति के लिए शराब की समस्या को भी हाथ में लेना होगा। आज भारतभर में शराब सबदूर खोल दी गयी है। शराब पीकर पतिदेव घर आते हैं और पत्नी को पीटते हैं। ऐसे पतिदेवों से बहनें त्रस्त हो गयी हैं। इससे गरीब का पैसा शराब में बरबाद हो जाता है और बहनों की मारपीट चलती है। शराब के बदले में सरकार को क्या मिलता है? पैसा! मराठी में कहना हो तो इसको 'पैशाची वृत्ति' कहेंगे, यानी पैसे का लालच। परन्तु संस्कृत में इसका अर्थ है पिशाच की वृत्ति! राजाजी ने अपने प्रान्त में शराब-बन्दी की थी। वे ९४ साल तक जीये। किसी ने उनसे उनकी दीर्घायु का कारण पूछा तब उन्होंने जवाब दिया—'मैंने अपने राज्य में शराब-बन्दी की है। उसके परिणामस्वरूप यहाँ की गरीब बहनें मुझे आशीर्वाद देती हैं। क्योंकि उनका जीवन अच्छा चला है, उनकी पिटाई नहीं होती, घर में संतोष रहता है। उनके उस आशीर्वाद के कारण मैं दीर्घायु हूँ।' हिन्दू धर्म और इस्लाम में शराब का निषेध किया है। परन्तु पैसे के वास्ते शराब-बन्दी नहीं हो पा रही है। शराब-बन्दी के लिए लोकमत खड़ा करना, जरूरत हो तो शराब की दूकानों पर पिकेटिंग करना, आदि काम खास करके बहनें उठा सकती हैं।

शरीयत के बारे में

मुस्लिम जमात में एक पति तीन-चार पत्नियाँ करता है। हमारा राज्य धर्मनिरपेक्ष कहलाते हुए भी उसमें स्त्रियों को तकलीफ देनेवाला ऐसा विलक्षण कानून है। घर में तीन-चार पत्नियाँ इकट्ठा रहती हों, तो कैसा कलह होता होगा, कितनी शान्ति रह पाती होगी, इसका ख्याल हम कर सकते हैं। कहा जाता है कि इसका कारण है मुस्लिम लॉ। लेकिन बाबा ने कुरान शरीफ का अध्ययन कम-से-कम तीस साल किया है और उसका सार निकाला हे। कुरान में जो मुख्य हिस्सा है, जिसे उम्मुल किताब कहते है, उसमें भगवान् कैसा है, उसका स्वरूप क्या है, उसकी भक्ति कैसे करना, उसके लिए दान-धर्म करना, इत्यादि जो धर्म-विचार है वह आता है, वही मुख्य चीज है। बाकी जिसे कानून कहते हैं—'शरीयत' वह तो उत्तरोत्तर बदलती गयी है। मुहम्मद पैगम्बर के जमाने में भी बदली है, बाद में भी बदली है। परन्तु हम समझते हैं कि ऐसी माँग तो मुसलमानों

की तरफ से आनी चाहिए। ठीक है, थोड़ी राह देखना अच्छा है। परन्तु उनको समझाना चाहिए कि सभी पत्नियों के साथ समान व्यवहार करना असम्भव बात है, इसलिए यह चीज जानी ही चाहिए। यह होगा तब स्त्रियों की ताकत बनेगी।

स्त्रियों पर होनेवाले अत्याचार

देश के विभाजन के समय हिन्दू-मुसलमानों के संघर्ष में एक-दूसरे ने एक-दूसरे की बहनें भगायीं। बाद में जब उन्हें छुड़ाने का प्रयत्न शुरू हुआ, तब मुसलमानों ने अपनी बहनों को स्वीकार कर लिया, पर हिन्दुओं ने स्वीकार नहीं किया। उन्हें कहना पड़ा कि वे स्वीकार करें। इसमें हिन्दुओं की दृटि गलत थी। ये बहनें अपनी इच्छा से तो नहीं गयी थीं। जबरदस्ती भगायी गयी थीं। ऐसी हालत में, उन्हें बच्चे हो गये तो भी, पतिता नहीं मानना चाहिए—यह सब हिन्दुओं को समझाना पड़ा। यह अनुदार वृत्ति दूर होनी चाहिए।

बंगला देश में हजारों स्त्रियों पर आक्रमण हुआ, उसमें स्त्रियों का कोई भी दोष मैं मानूँगा नहीं। उनकी सन्तान को योग्य सन्तान मानूँगा! लड़ाई में स्त्रियों पर अत्याचार होते हैं। उसमें से जो सन्तान पैदा होती है, उसे युद्ध-सन्तान—वॉर-बेबी कहते हैं। और वह जायज माना है। बंगला देश में पुरुषों की तरफ से जो पशुता प्रकट हुई, वह अत्यन्त घृणास्पद है। लेकिन उन स्त्रियों को मैं निर्दोष मानूँगा और उनकी सन्तान को जायज मानूँगा।

सामाजिक, नैतिक इत्यादि जो बन्धन हें, वे स्त्री, पुरुष सबको समान लागू होने चाहिए। और इस विषय में कम-से-कम हमारे धर्मशास्त्रों ने कोई भेद नहीं किया है; बल्कि उपनिषद् में एक जगह यह भी आया है, **मे जनपदे...न स्वैरी, स्वैरिणी कुतः**--मेरे राज्य में कोई स्वैरी नहीं है, तो स्वैरिणी कहाँ से होगी? इसका मतलब, व्यभिचारी स्त्रियाँ कम होती हैं। व्यभिचार की प्रेरणा पुरुषों में ज्यादा होती है। इसलिए व्यभिचार की जिम्मेवारी पुरुषों पर डाली, स्त्री पर नहीं डाली। जो आक्रमण हुए हैं, वे सारे पुरुषों द्वारा हुए हैं। इस कास्ते पुरुषों पर ज्यादा बन्धन होना चाहिए।

स्त्रियाँ और उद्योग

जिस तरह यंत्रों ने ग्रामोद्योग को, विदेशियों ने शहरों के व्यवसायों को और शहरों ने गाँव के उद्योगों को तोड़ने का काम किया है; उसी तरह पुरुषों ने भी स्त्रियों के उद्योग तोड़ने का व्यवस्थित काम किया है। पहले बुनने का उद्योग स्त्रियों के पास था। वेद में वर्णन आता है कि बुनने का काम स्त्रियाँ ही करती हैं। बुनने के लिए पुलिंग प्रयोग संस्कृत में नहीं है। **वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति**—अपने पुत्र के लिए माता वस्त्र बुनती है। यानी बुननेवाली। अंग्रेजी भाषा में भी ऐसा है। “हजबंड' यानी किसान, 'वाईफ” यानी बुननेवाली (वीव्ह” यानी बुनना।) बुनाई का काम स्त्रियों के ही हाथ में था। परन्तु आगे चलकर पुरुषों ने बुनाई शुरू कर दी और स्त्रियों को कांडी भरने का काम दे दिया। यानी मुख्य काम पुरुषों के हाथ में रहा और गौण स्त्रियों के पास आया। कांडी भरने के लिए अधिक स्त्रियों की जरूरत होती है, इसलिए बुनकरों में एक से अधिक पत्नी रखने की प्रथा चल पड़ी। इस तरह स्त्रियों को गौण स्थान मिला।

सिलाई का काम भी पहले स्त्रियों के हाथ में था। परन्तु अब सिलाई की मशीन आने के बाद वह काम भी पुरुषों की तरफ ही चला गया है। यंत्र के लिए मुझे कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन स्त्रियों का वह काम स्त्रियों के ही हाथ में रहना चाहिए। यों भोजन बनाने का काम स्त्रियों का माना जाता है, लेकिन हॉटेल खुलने के बाद यह धन्धा भी पुरुषों के हाथ में चला गया है। मेरा मत है कि जो काम स्त्रियों को करना सम्भव है, वह उन्हीं के लिए रहना चाहिए। अन्यथा सारे काम पुरुषों के हाथ में चले जायेंगे, और स्त्रियों को सदा-सर्वदा के लिए पराधीन, पुरुषाधीन रहना होगा।

आध्यात्मिक भाषा में लिंगभेद नहीं

एक बार एक बहन ने पूछा, शास्त्रों में पुरुष का जिक्र आता है, तो क्या स्त्रियों ने कुछ किया ही नहीं? गीता में तो स्त्रियों के लिए कोई शिक्षा ही नहीं दीखती। वहाँ स्थितप्रज्ञ है, गुणातीत है, योगी है। स्थितप्रज्ञा क्यों नहीं हो सकती? वह शायद (अंग्रेजी) 'ही' और ‘शी’ वाली कानून की भाषा चाहती थी। मैंने उससे कहा, उसकी फिक्र मत करो। गीता खुद तो स्त्री है और उसके उदर में ये स्थितप्रज्ञ आदि पड़े हैं। कानून में 'ही' और 'शी' कहना पड़ता है, पर वेदांत या धर्म में ऐसा

भेद नहीं। वहाँ प्रयोग पुलिंग में है, तथापि वह स्त्री पर भी लागू होता है। यह स्त्री, पुरुष आदि जो लिंग है, वह परम पुरुष से भिन्न है। इस 'पुरुष' में स्त्री-पुरुष-भेद ही नहीं है। यह 'पुरुष' प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, या अन्य पुरुष हो सकता है, पर उसे लिंग नहीं। स्थितप्रज्ञ का देह के साथ सम्बन्ध ही नहीं होता। स्थितप्रज्ञ पुरुष है, देह नहीं। इस तरह जहाँ स्थितप्रज्ञ आदि शब्द आते हैं, वहाँ व्याकरण के ख्याल से भी स्त्री और पुरुष दोनों का प्रयोग होता है। अध्यात्म में स्त्री-पुरुष-भेद माना ही नहीं गया है।

लहेज (दहेज) का विरोध करें

शादी में दहेज दिया जाता है। यानी आपने जहाँ लड़की दी, वहाँ उसके साथ थोड़ा-सा सुवर्ण आदि देते हैं। उस पर अन्य किसी का हक नहीं माना जाता, 'स्त्री-धन' के तौर पर वह माना जाता है। मैं उस दहेज के खिलाफ नहीं हूँ। मैं 'लहेज' के खिलाफ हूँ। लड़के ने एम.ए. की परीक्षा पास की, डॉक्टर हुआ, इंजीनियर हुआ, उसमें इतना खर्च आया, वह लड़कीवालों से लेते हैं, वह 'लहेज' है। हमारे एक साथी व्यापारी हैं, उनके घर में उनकी लड़की की शादी थी। मेरे पास आशीर्वाद माँगने आये थे। मैंने उनसे पूछा, शादी में कितना खर्च करोगे? उन्होंने पाँच उँगलियाँ बतायीं। मैंने पूछा, पाँच हजार? बोले, नहीं, पाँच लाख! अब क्या कहा जाय? कहाँ रहेगी स्त्री-शक्ति इसमें? यह सोचने की बात है। मैंने एक सूत्र बनाया है—एक शादी यानी जिन्दगीभर की बरबादी। कर्जा निकालकर शादी करते हैं लड़की की। फिर सतत ब्याज देते रहते हैं। उसमें से छुटकारा होता नहीं। ऐसी हालत है। तो वह जो 'लहेज' है, उसका विरोध करना चाहिए और इस वास्ते बहनों को भी समझाते रहना चाहिए, तब स्त्री-शक्ति खड़ी होगी।

आज समाज की हालत यह है कि घर में कन्या पैदा होती है, तो कुटुम्बीजन दुःखी होते हैं, उनके चेहरे उतर जाते हैं। हम कहते हैं, आपकी माँ भी तो कन्या ही थी। अगर सब लड़के ही लड़के पैदा हों तो क्या आप पसन्द करेंगे? यदि नहीं, माँ और पिता की कीमत समान है, तो लड़के की कीमत अधिक और लड़की की कम क्यों?

स्त्रियों के बारे में गलत ख्याल

अक्सर यह माना जाता है कि स्त्रियों में कामवासना ज्यादा होती है, लेकिन यह ख्याल गलत है। स्त्री को प्रसूति के परिणाम भोगने पड़ते हैं और बच्चों के लिए बड़ी तकलीफ उठानी पड़ती है, इसलिए उसके मन में अधिक वासना हो, यह सम्भव नहीं दीखता। एकबार जन्माष्टमी के दिन मैं वर्धा के लक्ष्मीनारायण मन्दिर में गया था। वहाँ देवकी माता का चित्र था। उसे प्रसूति की वेदना हो रही है, ऐसा उस चित्र में दिखाया था। जब चित्र में देवकी माता की तकलीफें मैंने देखीं, तब मुझे लगा कि माता को जब इतनी तकलीफ होती है, तो किसी माता को भगवान् ऐसी तकलीफ देंगे नहीं, उन्होंने जन्म ही नहीं लिया होगा! लेकिन माना जाता है कि स्त्री को संतान की इच्छा रहती है। स्त्री में मातृप्रेरणा है। इसलिए यह हो सकता हे कि स्त्री को प्रथम संतान की इच्छा हो। बिल्कुल ही संतानविरहित रहने का आदर्श शायद पुरुष की अपेक्षा स्त्री को अधिक कठिन मालूम होता हो। परन्तु एक सन्तान हो जाने के बाद स्त्री को वासना नहीं रहती होगी; क्योंकि फिर से तकलीफ उठाना वह नहीं चाहेगी। यह मेरा अपना विश्लेषण है। मैं नहीं जानता कि यह कहाँ तक सही है।

तात्पर्य यह कि स्त्री के बारे में यह गलतफहमी फैलायी गयी है कि उसे कामवासना अधिक होती है। इसी गलतफहमी का परिणाम है कि स्त्री पर अंकुश रखा जाता है। इसका नतीजा हिन्दुस्तान में यह हुआ कि अत्याचार हो जाता है, तो स्त्रियाँ भी पुरुषों का बचाव करती हैं। जरा गहराई से देखें तो मालूम होगा कि इसका मतलब यह है कि स्त्री के मन में पुरुष के लिए अनादर है। पुरुष कोई गलत काम करता है, तो बहुत बड़ी बात है, ऐसा उसे नहीं लगता। इसको 'स्त्री' का 'सुपिरिऑरिटी काम्प्लेक्स' कह सकते हैं। लेकिन स्त्रियों के लिए जो गलत मान्यता हुई है, उसे हटाना चाहिए। उसे हटाये बिना समाज का उद्धार नहीं होगा।

स्त्री-दाक्षिण्य भी गलत

आजकल समाज में सुधरे हुए लोगों में अधिकाधिक कृत्रिमता आ गयी है। इसलिए स्त्री के लिए ज्यादा आदर दिखाना, जिसे 'दाक्षिण्य-भाव' कहते हैं, चलता है। स्त्री को देवी कहा जाता

है। पुरुष अपने को स्त्री का सेवक मानता है। लेकिन हम मानते हैं कि इससे विषय-वासना बढ़ती ही है। जैसे स्त्री के लिए कोई अपात्रता समझना गलत है, उसी तरह स्त्री के लिए अधिक भाव या ऊँची भावना रखना भी गलत है। होना तो यह चाहिए कि आत्मा में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं है, भेद तो शरीर का है, इतना भान हो जाय। यह भान होने पर वासना से निवृत्त होना आसान हो जायेगा।

कपड़े सादे पहनें

स्त्रियों को ऐसा कपड़ा भी नहीं पहनना चाहिए, जिससे लोगों का ध्यान खिंचे। लोगों का ऐसा ध्यान जाना यह अच्छी बात नहीं। इसलिए बाहर जाते वक्त पोशाक सादी होनी चाहिए। कपड़े की उपयोगिता शरीर के रक्षण के लिए और लज्जा ढाँकने के लिए है। परन्तु आजकल की पोशाकें ऐसी होती हैं कि शरीर तो चौबीसों घण्टे खतरे में रहता ही है, बल्कि सारी लज्जा ही बाहर निकल पड़ती है। ऐसे चुस्त कपड़े नहीं पहनने चाहिए। अपना देह कोई प्रदर्शन की चीज नहीं है।

स्त्री-देह शक्ति में कम नहीं

स्त्री-शरीर दुर्बल है, ऐसा माना गया है। लेकिन कुछ वैज्ञानिकों ने शोध करके कहा है कि अधिक उम्र तक जीनेवाली स्त्रियाँ जितनी होती हैं, उतने पुरुष नहीं होते। मतलब स्त्री-शरीर में पुरुष-शरीर से कम शक्ति नहीं है। जीवनशक्ति स्त्रियों में यानी स्त्री-शरीर में कम नहीं। दूसरी बात एक स्त्री और एक पुरुष, दोनों समान उम्र के हों और समान काम करते हों, तो पुरुष का आहार २००० कॅलरीज का होगा तो स्त्री को १६०० कॅलरीज पर्याप्त होगी। तो स्त्रियों की शक्ति कम नहीं है और उन्हें आराम की आवश्यकता भी कम होती है। बल्कि कुछ वैज्ञानिक ऐसा भी कहते हैं कि पुरुष-देह से स्त्री-देह श्रेष्ठ है। उसमें परफेक्ट मैकेनिज्म है। क्योंकि स्त्री को गर्भ का रक्षण करना पड़ता है इसलिए वह शरीर बराबर किले जैसा बँधा होना चाहिए। यह ठीक ही लगता है। स्त्री की देह आक्रमक नहीं है, डिफेंसिव है। डिफेंसिव मैकेनिज्म तो पक्का होना ही चाहिए। यह तो मैंने केवल शरीर-शक्ति की दृष्टि से कहा है। परन्तु शक्ति-स्त्रोत शरीर नहीं, आत्मा है, जिसमें स्त्री-पुरुष-भेद है नहीं।

बहनें ग्राममाता बनें

घर जैसा प्रेमल वातावरण गाँव में भी निर्माण हो सकता है। बहनों को ग्राममाता बनना चाहिए। इससे गाँव गोकुल बनेगा। दुनिया में वैकुण्ठ निर्माण होगा। जहाँ प्रेम होता है, वहीं वैकुण्ठ होता है। भगवान् किसी कोने में नहीं पड़ा रहता। वह कैलाश में ही नहीं, हमारे यहाँ भी है। गाँव में प्रेम का वातावरण बने तो सबके जीवन पवित्र बनेंगे। स्त्रियाँ इसे सहज समझ लेंगी। लेकिन उन्हें तो सभा में भी आने नहीं दिया जाता। परदे में कैदी की तरह बन्द रखा जाता है। दरअसल उनके दिल छोटे नहीं होते, परन्तु घर के संकुचित वातावरण में रहने के कारण वे अपने ही बाल-बच्चों का सोचती हैं। लेकिन जब स्त्रियों के काम में ज्ञान आ जायेगा, तब ऐसी बात नहीं रहेगी।

शक्ति-मूर्ति के रूप में स्त्री

अपने यहाँ शक्तिरूप में स्त्री-मूर्ति ही मान्य हुई है, पुरुष-मूर्ति नहीं। जब महिषासुर देवों और मनुष्यों को सताने लगा, तब उससे किस तरह मुक्ति मिले, यह सवाल पैदा हुआ। सभी देव विष्णु के पास इकट्ठा हुए और आखिरकार सभी ने एकत्र होकर शक्तिमाता के पास जाकर प्रार्थना की कि महिषासुर से हमारा छुटकारा कीजिए। तब माता ने कहा कि तुम सबके पास जो भी शस्त्र हो, सब मेरे सुपुर्द करो। सबने वैसा किया और तब उस शक्ति से माता ने महिषासुर का मर्दन किया। इसलिए हिन्दुस्तान में शक्तिरूप में स्त्री-मूर्ति ही मान्य है।

विष्णु और शक्ति दोनों को एकत्र करके हम चिन्तन करते हैं। उसके फलस्वरूप एक ऐसा विचित्र चित्र हिन्दुस्तान में देखने को मिलता है, जिसकी दुनिया के किसी चित्रकार ने कल्पना नहीं की होगी। वह है अर्धनारी-नटेश्वर का चित्र। यह जो हिन्दुस्तान की कल्पना है, उसमें बहुत बड़ी प्रतिभा रही है। स्त्रियों के गुण स्त्रियों में तो प्रकट हुए ही हैं, पुरुषों में भी हैं—भारत की पूरी जनता में एक समान स्त्री-शक्ति है।

ब्रह्मचर्य ही शक्ति

स्त्रियाँ व्यर्थ की समता की बात में फँसेंगी, तो भयंकर होगा। 'स्त्री, पुरुष की बराबरी में है', इससे ज्यादा अपमानजनक बात क्या हो सकती है? हमारी प्राचीन संस्कृति में तो स्त्रियों को ज्यादा अधिकार हैं। अभी तो पुरुषों ने स्त्रियों को अत्याचार का साधन बना रखा है। मातृत्व का रूपान्तर व्यभिचार में हुआ है। इसका मुकाबला करने स्त्रियों को आगे आना होगा। मातृत्व ब्रह्मचर्य में होता है, इसलिए ब्रह्मचर्य की शक्ति का विकास स्त्रियों को करना चाहिए। तभी मातृत्व की पवित्रता सिद्ध होगी और समाज की रक्षा होगी।

•

परिशिष्ट : १

ब्रह्मविद्या-मन्दिर

[वर्धा से छह मील की दूरी पर, पवनार गाँव में, धाम नदी के उत्तर किनारे, टीले पर ब्रह्मविद्या-मन्दिर की इमारत खड़ी है। यह स्थान सन् १९३८ से ही विनोबाजी की साधना-भूमि रहा है। तत्पूर्व का भी इस स्थान का अपना एक भक्ति-इतिहास है, जिसकी गवाही देती कुछ प्राचीन मूर्तियाँ आज भी ब्रह्मविद्या-मन्दिर के अहाते में खड़ी हैं। कहा जाता है कि १४०० साल पहले वाकाटक-साम्राज्य की राजधानी में इसी स्थान पर एक विशाल राम-मन्दिर था और इस मन्दिर के प्रांगण की ये प्राचीन मूर्तियाँ आज भी इस भूमि को अभिमंत्रित करती हैं। भगवान् बुद्ध तथा महावीर स्वामी की प्राचीन मूर्तियाँ भी इस भूमि में मिली हैं।

२५ मार्च, १९५९ को इसी स्थान पर ब्रह्मविद्या-मन्दिर की स्थापना हुई। इसकी स्थापना का ऐलान स्वयं विनोबाजी ने अपनी राजस्थान की पदयात्रा के 'काशी के वास' में किया। प्रधानतया ब्रह्मचारी बहनों की सामूहिक साधना के लिए यह स्थान है, जहाँ २७ बहनों, कुछ भाइयों तथा कुछ वृद्धजनों का एक समूह साधनामय सामूहिक जीवन के प्रयोग में लगा है। यहाँ के सामूहिक जीवन के लिए पाँच धर्म माने गये हैं : (१) ब्रह्मचर्य का पालन, (२) श्रमनिष्ठा, (३) भक्ति, (४) सामूहिक साधना, (५) स्वाध्याय।

भारत के लगभग सभी प्रान्तों की बहनें इस समूह में शामिल हैं। सब राष्ट्रों की, सब धर्मों की बहनों का यहाँ स्वागत है। आश्रम का प्रत्येक कार्य आश्रमवासी अपने हाथ से करते हैं। खेती तथा मुद्रणालय यहाँ के समूह के मजदूरी पाने के माध्यम हैं। समूह का जीवन अधिक-से-अधिक स्वश्रमाधारित रहे, यह यहाँ के समूह की कोशिश है। साथ ही उपासना भी चलती है।

यहीं से 'मैत्री' नाम की हिन्दी मासिक पत्रिका प्रकाशित की जाती है, जिसके पूरे काम—छपाई, व्यवस्था, संपादन तक—का संचालन बहनें ही करती हैं।

इस समूह-जीवन की कार्य करने की पद्धति है—सर्वसम्मति। समूह में कोई संचालक, व्यवस्थापक, गृहमाता या गृहपति नहीं माना गया है। समूचा कार्य समूह में विचार-विमर्श कर सर्वानुमति से किया जाता है। समूह की ओर से व्यक्ति के लिए हर बात की पूर्ण स्वतंत्रता दी गयी है। व्यक्ति अपनी ओर से समूह को पूरी तरह से समर्पित रहने की कोशिश करता है।—सं.]

इस युग के महापुरुष : गांधी, रामकृष्ण

भूदान-आन्दोलन के बीच मानसिक संशोधन करने का बहुत मौका मुझे मिला। मुझे लगता रहा कि शंकर और रामानुज एक परम्परा छोड़ गये, जिसका अध्ययन और अनुसरण हजार-हजार वर्षो के बाद भी हिन्दुस्तान में चल रहा है। हिन्दुस्तान के कुल सन्तों पर उनका प्रभाव रहा। उस कोटि की विभूतियाँ इस जमाने में रामकृष्ण परमहंस और गांधीजी—ये दो हुईं। इस जमाने का बड़ा भाग्य है कि इसमें और भी कुछ नाम हैं, जो अपनी-अपनी तरह से भारत में अद्वितीय हैं। । परतंत्रता की हालत में भारतमाता ने दस-पाँच अव्वल दर्जे के रत्न पैदा किये। उन सबमें शायद ये दो नाम और दूसरे भी दो-तीन ऐसे नाम हैं, जो हजारों वर्षों तक बने रहेंगे।

वैसे मेरे मन में नाम का महत्त्व नहीं है, क्योंकि मैंने तो यह माना है कि दुनिया के सबसे श्रेष्ठ पुरुष वे नहीं हैं, जिनका नाम दुनिया ने जाना है। बल्कि वे हैं, जिनका नाम दुनिया ने नहीं जाना है। इसलिए नाम का महत्त्व नहीं है। फिर भी जैसे शंकराचार्य और रामानुज की परम्परा चली, वैसे ही ज्ञान-परम्परा के अधिकारी—जिनसे मेरा व्यक्तिगत परिचय हुआ—गांधीजी थे। श्री रामकृष्ण, अरविन्द, स्वामी दयानन्द, तिलक ओर टैगोर—इन सबका अध्ययन करने का मौका मुझे मिला और मैंने अपनी पूर्व परम्परा के उत्तम फलस्वरूप एक परिपूर्ण जीवन-दर्शन गांधीजी के विचारों में पाया।

गांधीजी का जीवन वाणी से श्रेष्ठ

विचारों की कीमत उतनी नहीं होती, जितनी जीवन की होती है। गांधीजी का जीवन उनकी वाणी द्वारा व्यक्त किये गये शब्दों से अधिक श्रेष्ठ था। ऐसे बहुत थोड़े उदाहरण मिलते हैं, जहाँ वाणी से श्रेष्ठ जीवन होता है। अक्सर वाणी श्रेष्ठ होती है, क्योंकि वह सूक्ष्म होती है। बहुत थोड़े

उदाहरण ऐसे होते हैं, जहाँ वाणी और वर्तन समान होता है। बहुत सत्पुरुष ऐसे होते हैं, जिनका 'एक्सप्रेशन' (भाव-प्रकाशन) कमजोर होता है। गांधीजी पढ़े-लिखे थे, उनका भाव-प्रकाशन अच्छा था, लेकिन उससे ज्यादा श्रेष्ठ उनका जीवन रहा।

गांधी-ज्ञान-परम्परा चले

मेरे मन में बार-बार आता रहा कि इतना सांगोपांग और मूल्यवान् विचार हमें मिला है, तो उसकी ज्ञान-परम्परा चलनी चाहिए। आज मुझे कोई घुमा रहा है, तो वह विचार ही। भूदान-ग्रामदान तो एक निमित्त है, एक बाह्य आलम्बन है। बाह्य आलम्बन के बिना भी विचार-प्रचार हो सकता है, जैसे महावीर ने किया था। लेकिन बाह्य आलम्बन रहा, तो विचार-प्रचार कुछ आसानी से होता है, जैसे गौतम बुद्ध का हुआ। मेरा अपना झुकाव महावीर जैसा है और रवैया मैंने अख्तियार किया है गौतम बुद्ध का। वह एक बाह्य साधन मिला है और उसे मुख्यतः विचार-प्रचार के साधन के तौर पर ही मैंने माना है।

हम ब्रह्मविद्या की दुनिया को भूल गये

मैं सोचता रहा कि यह ज्ञान-बीज गहरा जाना चाहिए। यह कैसे जायेगा? तो ध्यान में आया कि शंकर, रामानुज के पास जो चीजें थीं, उनमें से एक चीज की कमी गांधीजी के पास रह गयी। वे दोनों ‘मिस्टिक' थे, अनुभवी भक्त थे, दोनों ज्ञानी थे। अलावा इसके, दोनों समाज-सुधारक और कर्मयोगी थे। भारतभर में दोनों घूमे। शंकराचार्य की आयु थोड़ी रही और वह पूरी उन्होंने घूमने में लगायी। रामानुज भी काफी घूमे, लेकिन आखिर स्थिर हुए। फिर भी जीवन के हर पहलू को हाथ में लेने की जरूरत उनको नहीं थी, जो इस जमाने में पैदा हुई है। पारतंत्र्य के कारण स्वराज्य का काम गांधीजी के साथ जुड़ गया। परिणामस्वरूप कर्मयोग का माद्दा उनमें अधिक रहा। यह जो लाभ हुआ, वह उन दोनों को नहीं मिला था, लेकिन जैसे यह लाभ हुआ, वैसे एक न्यूनता भी रह गयी। सब धर्मों के सारभूत तत्त्व अहिंसा, सत्य आदि को हमने उठा तो लिया, पर मूल में उसकी जो बुनियाद है—ब्रह्म-विद्या की, वह अछूती रह गयी। उसे नहीं उठाया।

बुनियाद के बिना टिकना असम्भव

बचपन से मेरा झुकाव ब्रह्म-विद्या की तरफ था। उसकी कमी मुझे महसूस होती थी। बापू के जाने के बाद वह ज्यादा महसूस होने लगी और अब मन में यह निश्चय हो गया है कि इस बुनियाद पर यदि हम नहीं पहुँचते हैं, तो ये ऊपर-ऊपरवाली चीजें नहीं टिकेंगी। कम-से-कम हिन्दुस्तान में तो नहीं ही टिकेंगी, क्योंकि, हिन्दुस्तान तत्त्वज्ञान की भूमि है।

ईसामसीह इतना कहकर शान्त हो गये— "Love the neighbour as thyself" उस तत्त्वज्ञान का विस्तार उन्होंने नहीं किया। वे सिर्फ इतना ही कहते कि "Love thy neighbour" (पड़ोसी पर प्यार करो) "Love thyself" (अपने को प्यार करो) तो काफी था। लेकिन उन्होंने कहा कि 'अपने पड़ोसी पर वैसा ही प्यार करो, जैसे अपने पर करते हो'। पड़ोसी पर प्यार करना व्यवहार-धर्म है। वह मानव के विकास के लिए जरूरी है और आनन्द के अनुभव के लिए आवश्यक है। उन्होंने यह कहा कि पड़ोसी पर वैसा ही प्यार करो, जैसा अपने पर करते हो। लेकिन यह असम्भव है, अगर ब्रह्मविद्या तक हमारी पहुँच न हो।

ईसा और गीता

माँ बच्चे पर शायद अपने से ज्यादा प्यार करती है, कम-से-कम अपने जितना तो करती ही है। उसे ब्रह्म-विद्या की जरूरत नहीं है, क्योंकि शरीर से शरीर जुड़ा है। परन्तु समान आत्मा की एकता आये बिना और वहाँ तक पहुँचे बिना ईसा की वह बात नहीं हो सकती। हिन्दुस्तान में कोई कितना कह दे कि पड़ोसी पर प्यार करो, तो झट सवाल पूछा जायेगा कि क्यों किया जाय? प्यार किया जाय, यह बात तो समझ में आती है, परन्तु कहाँ तक किया जाय और क्यों किया जाय, इसका कारण क्या है, यह सवाल आयेगा; क्योंकि, यह भूमि ब्रह्मविद्या की है। उसका जवाब गीता देती है, उपनिषदें देती हैं।

राधाकृष्णन् ने अपनी किताब गांधीजी को समर्पण की है। आरम्भ में गांधीजी के बारे में एक वाक्य है कि "सरमन ऑन दी माउण्ट' (ईसा का पहाड़ी पर का उपदेश) भी मुझे वह तसल्ली

नहीं देता, जो गीता देती है।" इसका कारण और कुछ नहीं है। दोनों ने जो जीवन-धर्म सिखाया, वह एक ही है, परन्तु उसकी जो बुनियाद है—ब्रह्म-विद्या, वह गीता में मिलती है।

ब्रह्मविद्या-मन्दिर आवश्यक

इसलिए मुझे लगा कि इस चीज की कमी इसमें रह गयी है। उसकी पूर्ति किये बिना हमारा यह विचार अखण्ड प्रवाह में नहीं बहेगा। यह उत्तम विचार है, इसलिए दुनिया के सब सज्जनों को प्रेरणा देगा, यह बात अलग है। किन्तु उसका जो बहाव बहना चाहिए, वह नहीं बहेगा। इसका निर्णय मेरे मन में हुआ और इस बात का विचार किये बिना कि मुझमें उसकी शक्ति है या नहीं है, मैंने 'ब्रह्मविद्या-मन्दिर' शुरू करने का तय किया। शक्ति से भक्त श्रेष्ठ है। मुझमें शक्ति उतनी नहीं होगी, परन्तु उस विचार की भक्ति मुझमें अवश्य है। उसी भक्ति पर दारोमदार रखकर अब ब्रह्मविद्या-मन्दिर की स्थापना होने जा रही है।

मन्दिर का संचालन स्त्रियों के हाथ

यह भी मुझे लगा कि ऐसे आश्रम की स्थापना में कुल व्यवस्था बहनों के हाथ में होनी चाहिए। यह भी एक प्यास मेरे मन में थी। स्त्रियों की साधना हमेशा गुप्त रही है। उसका प्रभाव किसी-न-किसी व्यक्ति पर जरूर रहा है, परन्तु वह साधना प्रकट होने की बहुत जरूरत है। उसके बिना विश्व-शान्ति अकेले पुरुष नहीं कर सकते। ब्रह्म-विद्या में स्त्री-पुरुष-भेद नहीं रहता, इसलिए दोनों उसमें रहेंगे। यह इस जमाने की माँग है, नहीं तो बुद्ध ने स्त्री को प्रथम प्रवेश ही नहीं दिया था और दिया तो यह कहकर दिया कि "मैं एक खतरा उठा रहा हूँ।" लेकिन वह तो पुराना जमाना था। मैं तो इसमें खतरा मानता हूँ कि पुरुष के साथ स्त्री को स्थान न हो। उसमें ब्रह्म-विद्या अधूरी रहती है। उस ब्रह्म के टुकड़े-टुकड़े होते हैं। मैं स्त्रियों के हाथ में संचालन देकर उस ब्रह्म के उलटे टुकड़े करने नहीं जा रहा हूँ। जमाने की आवश्यकता है, इसलिए संचालन स्त्रियों के हाथ में रहेगा, तो वह सुरक्षित ही रहेगा।

सामूहिक समाधि

ब्रह्म-विद्या-मन्दिर बहुत गहरी चीज है। उसमें से शून्य भी निकल सकता है और अनन्त भी। लेकिन शून्य निकलना सम्भव नहीं, क्योंकि बहनें काम कर रही हैं, कुछ-न-कुछ आदर्श समाज के सामने आ ही जायेगा। इतनी बहनें ब्रह्मचर्य व्रत लेकर एक साथ इकट्ठा रहती हैं, जिनमें सब जातियों की, सब धर्मों की बहनें हैं। वे शरीर-परिश्रम करती हैं और शरीर-श्रम करके अपना कमाया हुआ खाती हैं, भगवान् का नाम लेती हैं। इसलिए बिलकुल शून्य तो नहीं ही बनेगा।

लेकिन यह प्रयोग गहरा है। बल्कि मैंने यहाँ तक कहा कि यहाँ से कोई मीरा या मुक्ता निकले, इससे बाबा को प्रसन्नता नहीं होगी। बाबा की अपेक्षा यह है कि यहाँ –'सामूहिक समाधि' हो। बहुत बड़ा शब्द हो जाता है। भारत में पाँच बहनों के नाम मशहूर हैं—कश्मीर की लल्ला, कर्नाटक की अक्का, राजस्थान, गुजरात की मीरा, महाराष्ट्र की मुक्ता और तमिलनाडु की आण्डाळ। लेकिन फिर भी वे शास्त्रकार नहीं बनी हैं। शास्त्रकार जितने बने, सारे पुरुष ही थे। मैं यहाँ तक अपेक्षा करता हूँ कि अभी तक ब्रह्म-विद्या का जो शास्त्र बना, जो पुरुषों ने बनाया है, वह एकांगी बना, उसमें संशोधन हो और संशोधित ब्रह्म-विद्या दुनिया के सामने आये और वह काम बहनों द्वारा हो। अपेक्षा करना बाबा के हाथ में है, फलश्रुति भगवान् के हाथ में है।

परिशिष्ट : २

स्त्री-शक्ति-जागरण

[जनवरी १९७३ में ब्रह्मविद्या-मन्दिर में एक छोटा-सा भगिनी-मिलन सम्पन्न हुआ। वहीं महिलाओं की चर्चा से स्त्री-शक्ति-जागरण-कार्य की कल्पना निकली। उसके बाद, अप्रैल में कुरुक्षेत्र में महिला-सम्मेलन आयोजित हुआ। देश के विभिन्न स्थानों से महिलाएँ आयी और भाषा-परिभाषा से मुक्त होकर, उसकी परवाह न करते हुए, जिसकी जो बोली थी उसमें, स्त्रियों ने अपने मन की बात रखी। स्त्रियों की उस उत्स्फूर्त अभिव्यक्ति एवं शक्ति को देखकर सोचा गया कि स्त्रियों में इसी विचार के आधार पर कोई व्यापक कार्य हो और अक्तूबर २ से ८ तक समूचे भारत में 'स्त्री-शक्ति-जागरण सप्ताह' मनाया गया। इसके अन्तर्गत भारत के जिले-जिले में, कश्मीर से कन्याकुमारी और द्वारका से डिब्रूगढ़ तक, कुल पाँच सौ महिला-यात्राएँ १९७३ में निकलीं और १९७४ में हजार टोलियों द्वारा पचहत्तर हजार बहनों ने पदयात्राओं में हिस्सा लिया। हर साल यह सप्ताह मनाया जाता है। इसके द्वारा स्त्री-शक्ति, आत्म-शक्ति, जन-शक्ति को जगाने का प्रयास होता है। अलावा इसके, स्त्री-शक्ति के अनुकूल भिन्न-भिन्न कार्यक्रम भी कार्यान्वित किये जा रहे हैं।

'यूनो' ने १९७५ 'महिला-वर्ष' माना। जगत् की सारी शुभशक्तियों ने इस विचार को शुभाशीर्वाद दिया। केवल भारत में ही नहीं, पश्चिम में भी स्त्री-मुक्ति आन्दोलन चल रहा है। अन्तत: वहाँ भी स्त्री मुक्ति के लिए ही छटपटा रही है। पर वहाँ का आन्दोलन खड़ा है 'मैं' के आधार पर। पर 'मैं' के आधार पर खड़े आन्दोलन में मानव आत्मसम्मान प्राप्त नहीं कर सकता! इस 'मैं' को खतम कर अनन्त में विलीन हो जाने की आकांक्षा जब स्त्री में पैदा होगी, तभी स्त्री अपने में भी सम्मानित होगी। विनोबाजी ने एक जगह कहा है : "विश्वव्यापी अनुराग ही विराग है।" अनुराग को 'मैं' से हटाकर विश्वव्यापी बनाना है। यह आकांक्षा स्त्री को आत्मसम्मान प्रदान करेगी। स्त्री-शक्ति आन्तरिक शक्ति है, वह कोई पुरुष-विरोधी शक्ति नहीं है। सबमें छिपी इस शक्ति की

अभिव्यक्ति को अवसर मिलना चाहिए। इसी शक्ति को जानने का प्रयास तीन-चार साल से स्त्री-शक्ति-जागरण' के द्वारा चल रहा है।—सं.]

'गीता' में स्त्रियों की सात शक्तियों का वर्णन किया गया है। उसके आधार से सप्तशक्ति पर बाबा का एक प्रवचन प्रकाशित हो चुका है। कीर्तिः, श्रीः, वाक्, स्मृतिः, मेधा, धृतिः, क्षमा— ये सात स्त्री-शक्तियाँ हैं, ऐसा कहा गया है। तो भगवद्गीता की स्त्रियों से क्या अपेक्षा है, यह जाहिर है। उसमें भी बड़ी बात है, गीता स्वयं माता है। अम्ब! **अम्ब त्वां अनुसंदधामि**—प्राचीन काल से गीता का जो ध्यान होता है, उसमें 'गीता' को 'माता' कहा है और उसी नाते से हम उसी तरफ देखते हैं। मातृसंधाम् मातृदृष्टि से देखते हैं। 'गीता' नाम भी स्त्रियों में होता है। 'गीता' हिन्दुस्तान का सबसे श्रेष्ठ ग्रन्थ है। 'गीता' से बढ़कर हिन्दुस्तान में दूसरा ग्रन्थ नहीं। वेद से बढ़कर उपनिषद्, और उपनिषद् से बढ़कर गीता, यह हमारी परम्परा है और इस गीता का असर कुल दुनिया पर पड़ा है। दुनिया की कोई भाषा नहीं, कोई धर्म-विचार नहीं, जिस पर गीता का असर नहीं पड़ा है। आस्तिकों को और नास्तिकों को समान भाव से गीता पूज्य है।

इतनी महान् शक्ति स्त्रियों में मानी गयी। उनका सम्मेलन हो रहा है। हिन्दुस्तान के कुल प्रदेशों की बहनें यहाँ इस सम्मेलन में आयी हैं—असम से लेकर केरल तक की। हिन्दू भी हैं, जैन भी हैं, मुस्लिम भी हैं, क्रिश्चयन भी हैं, सब धर्मों की बहनें यहाँ आयी हुई हैं। यह सम्मेलन हमारे लिए बहुत ही शक्तिशाली होगा, ऐसी मैं उम्मीद करता हूँ। आपने सुना होगा कि 'यूनो' ने १९७५ 'स्त्री-वर्ष' माना है। उसके साथ स्त्री-शक्ति सम्मेलन का सहज मेल मिल गया।

शक्ति का जो स्त्रोत है—मूल स्त्रोत—वह न स्त्री शरीर में है, न पुरुष-शरीर में। वह है अन्तरात्मा में। अन्तरात्मा स्त्री-पुरुष-भेदरहित है। शक्ति उसमें पड़ी है। कुछ लोग कहते हैं, स्त्री-शरीर दुर्बल है। लेकिन मैंने एक जगह देखा था अपनी आँखों से, गाँव की अशिक्षित स्त्री थी, पति आया बाहर से और उसे डॉटकर बोलने लगा, तो उस स्त्री ने पति को एक तमाचा मारा। ऐसी होती हैं स्त्रियाँ! शिक्षित स्त्रियाँ दुर्बल होती हैं, यह बात सही है। लेकिन अशिक्षित स्त्रियाँ दुर्बल होती ही हैं, ऐसा नहीं। कुछ शास्त्रज्ञों ने, वैज्ञानिकों ने, तलाश कर कहा है कि अधिक जिन्दगी जीनेवाली

स्त्रियाँ जितनी होती हैं, उतने पुरुष नहीं होते। सौ साल की उम्रवाले पुरुष जितने हैं, उनसे स्त्रियाँ ज्यादा हैं। मतलब, स्त्री-शरीर में पुरुष-शरीर से शक्ति कम नहीं है। दूसरी बात, एक स्त्री और एक पुरुष, दोनों समान उम्र के हों और समान काम करते हों तो पुरुष का आहार २००० कैलोरी का होगा, तब स्त्री को १६०० कैलोरी पर्याप्त होगी। तो स्त्रियों की शक्ति कम नहीं और उन्हें आहार कम लगता है।

यह तो मैंने शरीर-शक्ति की दृष्टि से कहा, परन्तु शक्ति का मूल स्त्रोत शरीर नहीं, आत्मा है, जिसमें स्त्री-पुरुष-भेद नहीं है। यह भेद अगर हम भूल जायँ,] और अपने को आत्मरूपेण देखना शुरू करें, तो शक्ति आयेगी।

एक घटना आपके सामने रखकर मैं समाप्त करूँगा। पुरानी बात है। जब मैं बंगाल में घूम रहा था, तब रामकृष्ण परमहंस की समाधि जिस तालाब के किनारे लगी थी, उस तालाब के पास मैं पहुँचा। वह शान्त सरोवर देखा। उसी वक्त मुझे सभा में बोलना था। मैंने कहा, रामकृष्ण परमहंस ने एक बात कर ली, व्यक्तिगत समाधि साध ली। हमें सामूहिक समाधि साधनी है। 'सामूहिक समाधि!' यह शब्द-प्रयोग मैंने उस दिन किया। हम अभी ब्रह्मविद्या-मन्दिर में बैठे हैं। इस स्थान का उद्देश्य है कि हम सामूहिक समाधि में मग्न हों। हमारे पूर्वजों ने व्यक्तिगत समाधि साध ली, हमें सामूहिक समाधि साधनी है, खासकर ऐसे स्थानों में, जहाँ बहनें मुख्य हों। ऐसे स्थान पर आप सब बैठे हैं, तो आशा है कि इस शब्द की प्रेरणा इस युग को नि निरन्तर रहेगी।

•